हम सब अमर हैं

पूर्णानन्द मिश्र

नम्बर १९५१ ई०

मूल्य ५)

प्रकाशक—

पूर्णानन्द मिश्र

रतनगढ़ (राजस्थान)

प्रथम बार

मुद्रक—

श्री साधना प्रेस

रतनगढ़ (राजस्थान

भूमिका के दो शब्द

बात आज की नहीं बहुत बहुत पुरानी है हजारों वर्ष पुरानी। एक दिन ऋषिकुमार नचिकेता सहसा ही मृत्यु के देवता भगवान यमराज के घर जा पहुँचे और उनसे पूछ बैठे. देव! पृथ्वी तल पर मनुष्य जब मर जाता है तब क्या उसका अस्तित्व सदा सदा के लिये मिट जाता है अथवा क्या वह तब भी किसी न किसी रूप में वर्तमान रहता है। इस बारे में इस विषय को लेकर दो मत प्रचलित हैं— कुछ विचारक मृत्यु के उपरान्त व्यक्ति के अस्तित्व का प्रतिपादन करते हैं जबकि कुछ दूसरे विचारक उनके ऐसे अस्तित्व को बिल्कुल नहीं मानते। मृत्यु के अधिपति होने के कारण आपही इस रहस्य पर प्रकाश डाल सकते हैं कृपा कर बतलाइये।"

नचिकेता के इस प्रश्न का उत्तर यमराज ने कुछ मार्मिक शब्दों में दिया था। मन है इस उत्तर से नचिकेता और उसके बाद आने वाली हजारों आत्मजीवियों को कब कुछ सन्तोष और समाधान मिला— इस बात की अपेक्षा में न जाकर एक बात तो हम अवश्य कहेंगे कि नचिकेता ने जो यह प्रश्न उठाया था वह एक चिरन्तन या कोटि कोटि मानवों का प्रश्न था। मानव इतिहास के उस आदिकाल से लेकर, जिसकी बाबत कुछ भी न जान पाने के कारण जिसे हम प्रागैतिहासिक-काल कहते हैं, आज तक कोटि

कोटि मनीषियों की एक बहुत लम्बी परम्परा रही है जिन्होंने अपने सामने मरते हुए अपने सगे-स्वजनों का देख देख कर परोक्ष या प्रत्यक्ष रूपों में "मृत्यु के बाद — क्या ?" इस प्रश्न को खोजना चाही है।

"मृत्यु के बाद——क्या ?"— चिर-मानव का यह एक सार्वभौम और सार्वकालिक प्रश्न रहा है। इस प्रश्न ने ऋषियों दार्शनिकों विचारकों, और वैज्ञानिकों के रूपों में अपने अपने समाधान प्रस्तुत करने वाले धाराओं की एक विरल परन्तु लम्बी परम्परा को भी साथ ही जन्म दिया है।

"हम सब अमर हैं" नामक इस पुस्तक में मैंने आधुनिक विज्ञान की कुछ उपलब्धियों को आधार बनाकर इस चिर प्रश्न का एक सुलझा हुआ-सा समाधान प्रस्तुत किया है।

विज्ञान ने आज हमें बतला दिया है कि विश्व ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु जो अपना अस्तित्व रखती है और हम अपनी इन्द्रियों अथवा वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा जिसका अध्ययन कर सकते हैं उसे हम पदार्थ (Matter) कहते हैं। सूक्ष्मतम परमाणु और प्रकाश की किरणें, मनुष्य और कंकड़ पत्थर, हवाएं और लहरें तारे और उनके ग्रह-उपग्रह समुद्र और पहाड़— यह सब पदार्थ के ही भिन्न भिन्न रूपान्तर हैं।

पदार्थ और, इस कारण, विश्व-ब्रह्माण्ड परिवर्तनशील और अविनश्वर है। इस परिवर्तनशीलता के विशुद्ध रूप को सहज बुद्धि-गम्य बनाकर आसानी से समझ लेना बड़ा मुश्किल है हमारी अपनी

आकाशगंगा-वलि के घेरे के बाहर है। पृथ्वी से चलकर चन्द्रमा तक आ पहुँचने के लिये प्रकाश को एक सेकण्ड से कुछ ही अधिक समय लगता है। दूसरी ओर आधुनिक दूरबीनों ने हमें उन तारों को देख पाने की सामर्थ्य दी है जिनके प्रकाश निकले दो अरब वर्षों से हमारी पृथ्वी की ओर लगातार दौड़ चले आकर हमें आज मिल रहे हैं। यह तारे हमारी पृथ्वी से लगभग २०,०००,०००,०००,०००,०००,०००,००० किलोमीटर दूर हैं। चन्द्रमा और इन तारों के इन दो उदाहरणों की आपेक्ष तुलना करने पर हम एक मोटा-सा अनुमान लगा सकते हैं कि एक सेकण्ड की तुलना में २ अरब प्रकाश वर्ष क्या है। परन्तु अपरिमेयता (Infinity) की तुलना में तो दो अरब वर्ष भी महज एक नगण्य से बिन्दु ही हैं।

अँधेरी रातों में जब हम आकाश की ओर ऊपर आँखें उठा कर देखते हैं तो हमें यह आकाश तारों से जगमगाता भरा हुआ दिखता है। बहुत कुछ सम्भव है कि हमारी दृष्टि-सीमा के उस पार कोई और तारे तो न हों परन्तु कुछ और नई रेखाएँ हों जो हमारे लिये बिल्कुल अजनबी हों और इस कारण हमारी सूझ-बूझ से परे हों। चाहे जो हो एक बात का तो हमें पूरा विश्वास है कि यह सब भी पदार्थ के ही रूपान्तर होंगे और इस बात का तब यही अर्थ होगा कि उनके वास्तविक अस्तित्व हैं और उन पर भी विश्व-प्रकृति के वही नियम लागू होते हैं जो हमारे इस विश्व के सभी ज्योति पिण्डों पर लागू हैं।

विज्ञान ने हमें यह भी बतलाया है कि पदार्थ को न तो नये सिरे से निर्मित ही किया जा सकता है और न उसको सर्वथा नष्ट ही किया जा सकता है। हम केवल पदार्थ को एक रूप से दूसरा रूप बदलते हुए या बदले हुए ही देख भर सकते हैं। पदार्थ, अपने सम्पूर्ण रूप में हमेशा चिरकाल से रहता चला आया है और आगे भी हमेशा ऐसा ही बना रहेगा– अपरिमेय और अविनश्वर, भले ही वह बीच बीच में अपने रूप बदलता रहे।

हममें से प्रत्येक मनुष्य का शरीर भी पदार्थ (Matter) का ही बना हुआ है। मात्र पदार्थ से ही बना होने के कारण हमारा शरीर भी अपने कारण-रूप पदार्थ के अनुरूप ही अपरिमेय और अविनश्वर है। हाँ वह अपने रूपों में परिवर्तन जरूर कर लेता है। जिसे हम मृत्यु कहते हैं वह हमारे शरीर के एक रूप बदलने की तरह क्रिया मात्र है। यही नहीं शरीर का यह रूप- परिवर्तन का क्रम तो हमारे जन्म लेने के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है, मृत्यु तो इस प्रक्रिया की एक समाप्ति मात्र है।

जैसा कि विज्ञान का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है पदार्थ मूल तीन रूपों में से बना हुआ रहता है ठोस, तरल और गैसीय। इन तीनों रूपों में वर्तमान पदार्थ का सूक्ष्मतम अंश होता है परमाणु। परमाणु ही अपने अन्दर शक्ति (Energy) का रूप ग्रहण करता है और इस शक्ति के विविध रूपों में प्रकाश, विद्युत और इलेक्ट्रान किरणें इत्यादि हैं।

हमारे शरीर का निर्माण करने वाला पदार्थ भी निरन्तर इलेक्ट्रन किरणों के रूप में बदलता रहता है। यह किरणें हमारे सम्पूर्ण शरीर के प्रत्येक घटक परमाणु से, चोटी से लेकर एड़ी तक निरन्तर निकलती रहती और चारों ओर अनन्त आकाश में गति करती रहती है। हमारे भौतिक शरीर के बिल्कुल अनुरूप ही हमारी यह इलेक्ट्रन-किरणें भी एक पूरा ढांचा बनाकर निकलती रहती है। यह किरणें अपनी १८६,००० मील प्रति सैकण्ड की गति से यों अनन्त शून्य (Space) में आगे और आगे बढ़ती चली जाती है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त यह प्रकाश-किरणें यों हमारे पूरे शारीरिक ढांचे को छोड़ती हुई हम में से प्रत्येक व्यक्ति का एक प्रकाश-मय जीवन-गुच्छ (Life set) बना देती है जो निरन्तर गतिशील रहता है। इसी प्रकाशमय जीवन गुच्छ के रूप में, जो कभी नष्ट नहीं हो सकता, हम सब चिरकाल तक गति करते हुए अमर बने रहते हैं।

अनन्त शून्य देश (Space) में निरन्तर विद्युत्-तूफान (electric storms) उठते रहते हैं। क्योंकि हमारा यह प्रकाश मय जीवन-गुच्छ भी विद्युत्-शक्ति-युक्त होता है इसलिये वह कभी कभी इन तूफानों की पकड़ में आकर पृथ्वी पर वापिस लौट आता है और पृथ्वी की वनस्पतियों द्वारा पकड़ा जाकर भोजन के रूप में स्त्री-पुरुषों के रज और शुक्र में परिणत होकर उनकी सम्भोग प्रक्रिया में हमें फिर यहीं जन्म दे जाता है। ऐसे ही हम पुनर्जन्म पाते हैं।

अपने पूर्व जन्मों का ज्ञान बताने वाले अनेक बालकों के

वृत्तान्त हम अक्सर सुनते और पढ़ते रहते हैं। यह सब इस प्रक्रिया की ही देन है।

मेरी इस पुस्तक का मूल सूत्र यह प्रश्नात्मक जीवन-तत्त्व ही है। इस मूल सूत्र को बोधगम्य बनाने के लिये मैंने आधुनिक विज्ञान की अनेक शाखाओं की सर्व मान्य उपलब्धियों का आश्रय लिया है जिनमें शरीर विज्ञान, प्राणि रसायन विज्ञान और परमाणु नाभिक विज्ञान प्रमुख हैं।

मनुष्य-शरीर के अंगों और अवयवों का पूरा परन्तु संक्षिप्त विवरण देकर मैंने उनके मूल आधार आल्बुमिनों और प्रोटीनों एसिडों का तात्त्विक विश्लेषण कर यह दिखलाया है कि वह केवल १३ या १४ मूल तत्त्वों (elments) से ही बने हुए हैं। फिर एक परिच्छेद में मूल तत्त्वों का विश्लेषण कर यह दिखलाया है कि विभिन्न होते हुए भी वह सब मौलिक रूप से केवल तीन कणों से ही बने हुए हैं जो इलेक्ट्रान प्रोटान और न्यूट्रान हैं। इसी परिच्छेद में ही मैंने शक्ति के विविध रूपों – प्रकाश, विद्युत् इत्यादि का पूरा ज्ञान दे दिया है।

पांचवें परिच्छेद में मैंने इन तीनों कणों के संयुक्त समवाय से जीवन के आविर्भाव की पूरी कहानी देकर छठे परिच्छेद में मानव प्राण की बनावट और वृद्धि का ज्ञान दिलाकर प्राणी की वृद्धावस्था और मृत्यु के कारणों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। सातवें परिच्छेद में मैंने पुराने भारतीय योगियों और आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा हमारे इस भौतिक शरीर को ही अमर बनाये रखने के प्रयत्नों का विस्तार

प्रस्तुत किया है।

अन्त में आठवें परिच्छेद में पुस्तक की मुख्य वर्ण्य-वस्तु का अत्यन्त विस्तृत और ऊहापोह-पूर्ण विवरण देकर प्रत्येक बातों को स्पष्ट अमर सिद्ध किया है।

मानव ज्ञान के जिस स्तर पर मेरी यह पुस्तक पड़ी है वहाँ ज्ञान की विभिन्न शाखाएँ धर्म दर्शन और विज्ञान,— सब आकर एक हो गये हैं। इस पुस्तक के अन्त में मैंने एक विचार पेश किया है जो मृत्यु और अमरत्व की ओर देखने का एक मौलिक तरीका है। मुझे पूरा विश्वास है कि अधिकारी विद्वान् और मननशील व्यक्ति इस विचार धारा की न्यूनताओं या त्रुटियों पर गौर करेंगे और इस विचार धारा को वैज्ञानिक गति प्रदान करेंगे।

इस पुस्तक के प्रकाशन में मुझे श्री शिवकुमारजी गुप्ता और श्री बालकृष्णजी द्वारा जो आर्थिक सहयोग मिला है उसके लिये मैं उनका आभार मानकर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता भावना प्रकट करता हूँ।

[illegible]
दीपावलि
७ नवम्बर १९५१ ई०

पूर्णानन्द मिश्र



विषय-सूची



पहिला परिच्छेद

मृत्यु के विरुद्ध मनुष्य का अभियान।

स्वयं रोते हुए जन्म लेना और फिर, कुछ वर्ष सांस लेकर, अपने स्त्री-बच्चों को रुलाकर मर जाना — इन की प्रमुखता से उभरे हुए और प्रत्यक्ष दिख पड़ने वाले मोड़ों के बीच ही मनुष्य की कहानी चिरकाल से कही जाती रही है। उसकी इस कहानी का विषय होता है: सुख-दुःख हर्ष-विषाद सौहार्द-द्वेष और सहअस्तित्व विग्रह के परस्पर विरोधी सूत्रों से गुंथे हुए कुछ सक्रिय वर्ष।

हमारी अपनी आँखें बनावट में स्थूल और सीमित-शक्ति की ही होती हैं। संसार में रहते हुए हमारे आपसी व्यवहारों को हम निभा सकें बस इतनी दृष्टि-शक्ति ही हमारी आँखों को विश्व-प्रकृति ने दी है। इस सीमित दृष्टि-शक्ति के बाहर दोनों ओर जो कुछ भी घटनाएं होती रहती हैं उनको हम हमारी इन आँखों से कभी देख नहीं सकते। इस लिये मनुष्य की कहानी का वह थोड़ा-सा भाग ही जो कुछ काल के लिये पार्थिव रूपों में उभर उठता है, हमें दिख पड़ता है। माता के पेट से निकल कर बाहर दुनियां में आने का नाम हमने "जन्म" रख छोड़ा है और कुछ गिने-चुने वर्षों में कुछ गिने-चुने ही सांस लेकर जब व्यक्ति अपना दम तोड़ देता है उसे हमने "मृत्यु" की संज्ञा दी है। "जन्म" और "मृत्यु" के बीच के वर्षों को ही हम उस व्यक्ति का जीवन-काल कहते हैं क्योंकि, हम

थोड़े से वर्षों के भीतर ही निरन्तर गति करते हुए अव्यक्त और इस कारण न दिख पड़ने वाले "क्वान्टम-क्षेत्र" (Quantum fields) परमाणुओं, अणुओं इलेक्ट्रानों और मूलतत्त्वों के क्रमिक रूपों में विकास करते हुए मनुष्यों, पशुओं पक्षियों कीड़ों-मकोड़ों, वनस्पतियों पेड़-पौधों, नदियों, समुद्रों और पर्वतों के रूपों में उभर कर मूर्त भौतिक आकार ग्रहण करते हैं और फिर उनके पारस्परिक संघात के होते रह जाने के कारण उसी उल्टे क्रम में बिखर जाते हैं। उनके इस बिखराव का नाम ही मृत्यु है।

जन्म और मृत्यु का एक अटूट सम्बन्ध है – जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है। मृत्यु जितनी निश्चित वस्तु संसार में दूसरी नहीं है। जन्म नहीं भी हो सकता है; परन्तु जन्म के उपरान्त मृत्यु अनिवार्य है। श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार– "मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते। अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः।" 'हे वीर, जन्म लेने वाले प्राणियों की देहों की उत्पत्ति के साथ ही मृत्यु भी जन्म ले लेती है। चाहे आज हो चाहे सौ वर्षों के बाद:– प्राणियों की मृत्यु निश्चित है।' वस्तुतः जन्म और मृत्यु के बीच बहुत बड़ा फासला भी नहीं है। ज्योति तो जिस प्रकार अन्धकार की गोद में ही हंसती है उसी प्रकार मृत्यु के मुख में ही जीवन का स्पन्दन या हिलना डुलना होता है। हमारी अपनी बोध-शक्ति की सीमता के कारण ही हम इन दोनों में एक द्वन्द्व का आभास करते हैं। वस्तुओं की हिंसा में ही जगत के जीवन का आभास होता है। हिंसा के बिना अहिंसा का अस्तित्व ही नहीं है।

क्योंकि है तो छाया का भी अस्तित्व है। मृत्यु जीवन के साथ साथ चलती है।

बुद्धि की सीमितता से हम जीवन के एकमात्र अंश को ही जान पाते हैं और उसे ही सर्वाधिकारी महत्त्व देते हैं। तस्वीर के एक ही रुख का ज्ञान होने के कारण हमें मृत्यु में उस सत्य की उपलब्धि नहीं होती जिसे हम जीवन में पाते हैं। इसीलिये मृत्यु को हम अभिशाप कहते हैं और जन्म को वरदान। प्रत्येक नये जन्म पर हम खुशियाँ मनाते हैं परन्तु प्रत्येक मृत्यु हमें दुःख और शोक से भर जाती है। एक (जन्म) हमें "कुछ नया" लाकर देता है तो दूसरी (मृत्यु) हमसे "कुछ हमारा" छीन ले जाती है। इस "छीन ले जाने" के कारण ही मनुष्य सदा मृत्यु से भय खाता चला आया है।

जिस घटना या वस्तु से वह भय खाता है; उससे बचने या उसको टालने का मनुष्य निरन्तर प्रयास करता रहा है यह मनुष्य का एक मौलिक स्वभाव है। लाखों वर्ष पहिले जब पृथ्वी पर मनुष्य का सर्व प्रथम प्रादुर्भाव हुआ था तभी अचानक किसी एक दिन उसका मृत्यु से साक्षात्कार हुआ था। उसके बाद आये दिन उसने मृत्यु के सहज निर्मम क्रूर हाथों को अपने सगे-सम्बन्धियों और बाल-हमजोलियों को अपने से दूर लिये जाते हुए देखा है। इस मृत्यु को किसी प्रकार टाल कर उस पर विजय पाकर अमर हो जाने की दुर्दम्य लालसा ने हमेशा ही मनुष्य के अन्तर्मन को आन्दोलित किये रखा है। हजारों वर्ष पुराने मनुष्य के इतिहास के प्रत्येक चरण ने अनेकों ऐसे प्रबुद्ध विचारकों ज्ञानी और महात्माओं को जन्म दिया है जिन्होंने अपने अपने युगों में मृत्यु की इस रहस्यमय पहेली को सुलझाने एवं

उसके दुर्निवार से छिन्न पड़ने वाले पाश से समूची मनुष्य जाति को मुक्त करने के साधनों को खोज पाने के प्रयत्न किये हैं। उनके इन प्रयत्नों ने ही धर्म, दर्शन और विज्ञान की त्रिवेणी को, उसकी अनेक धाराओं और प्रशाखाओं के साथ, प्रस्फुटित और प्रवाहित किया है।

सुदूर अतीत की हजारों वर्ष पुरानी पर्तों के अन्तराल को भेदकर गुंजरित होने वाला वैदिक युग का एक मंत्र आज भी मृत्यु से भयभीत तत्कालीन मानव की करुण पुकार को यों गुंफित करते हुए हमें सुन पड़ता है "असतो मा सद्गमय; तमसो मा ज्योतिर्गमय; मृत्योर्मा अमृतंगमय" (मुझे असत् से सत् की ओर ले चलो; अंधकार से आलोक की ओर ले चलो; मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो)। वैदिक ऋषि की यह करुण प्रार्थना ही तो सार्वकालिक और सार्वदेशिक मनुष्य जाति की सामूहिक इच्छा की प्रतीक है; मनुष्य-जीवन का धर्म है; उसके जीवन का दिशा-दर्शन है और उसके जीवन का एकमात्र विचार है।

मृत्यु पर विजय पाकर अमर हो जाने की इस स्वाभाविक मानवी अभिलाषा की पूर्ति के साधन का मार्ग खोज पाने के लिये वैदिक युग के अनेक ऋषियों और विचारकों ने प्रयास तो अवश्य ही किये होंगे। शुक्ल यजुर्वेद के पुरुष सूक्त के एक ऋषि नारायण ने तो इसी खोज कर दृढ़ विश्वास के साथ यह कहा था—

वेदाहमेतम्पुरुषम्महान्तमादित्यवर्णन्तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

"जानता हूँ मैं उस महान् पुरुष को जिसका वर्ण सूर्य के समान है और जो अन्धकार से परे, अवस्थित है। उसको जानकर ही

(मनुष्य) मृत्यु के पार जा सकता है, यमराज की ओर पैर बढ़ाने का और कोई मार्ग ही नहीं है।"

आगे चलकर उपनिषद्-काल में हम ऋषिकुमार नचिकेता को मृत्यु के देवता यमराज से हठपूर्वक मृत्यु के स्वरूप और रहस्यों पर प्रकाश डालने के लिये यह पूछते हुए देखते हैं:—

"येयम्प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये
अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ॥"

"मनुष्य के मरजाने पर उसके विषय में जो यह शङ्कास्पद बातें उठाई जाती हैं— कुछ विचारक कहते हैं कि उस मृत मनुष्य का उसकी मृत्यु के बाद भी अस्तित्व रहता है और कुछ लोग कहते हैं हैं कि नहीं रहता। आप इस विचारास्पद बात को सुलझा कर मुझे बतलाइये।

यमराज ने मनुष्य के मरने के बाद ज्योतिर्मय आत्मा के रूप में उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हुए उस मनुष्य के अमर होजाने के लिये आवश्यक क्रिया-विधान को भी बतलाया था:—

शतंचैका च हृदयस्य नाड्य-
-स्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका ।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति
विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥

'हृदय की एक सौ एक नाड़ियाँ हैं, उनमें एक नाड़ी मस्तक को भेदकर बाहर निकली हुई है। मृत्यु समय जो मनुष्य उस नाड़ी में अपने प्राणों को संयुक्त कर ऊपर मस्तक की ओर होकर प्राण-विसर्जन करता है वह 'अमृतत्व' को पाता है। बाकी अन्य सब नाड़ियों से होकर प्राण विसर्जन करने वाले प्राणी को फिर इस

संसार में ही लौट आना पड़ता है।" अपना अंतिम निर्णय देते हुए यमराज ने नचिकेता को बतलाया कि 'जन्म और मृत्यु केवल कल्पना है किन्तु ज्योतिस्वरूप ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है।"

बृहदारण्यक उपनिषद् ने मृत्यु और "अमृत" (अमरता) के स्वरूप को बतलाते हुए कहा है – "मृत्युर्वैतमः ज्योतिरमृतम्।" अन्धकार ही मृत्यु है और ज्योति अथवा प्रकाश ही अमृत है। एक अन्य उपनिषद्कार ने कहा है – "परंज्योतिरूपं सम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते" अर्थात् प्रत्येक प्राणी अपनी मृत्यु के बाद परम ज्योति में परिवर्तित होकर अपने मूल-स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। अमरत्व का विवेचन करते हुए अनुगीता कहती है:—

"एको यमोऽस्ति ततोऽद्वितीये यो हृच्छयस्तमहमनुब्रवीमि"

अर्थात्, उस परम ज्योति से अलग दूसरा कोई पृथक् अस्तित्व नहीं है – प्रत्येक प्राणी (और अप्राणी भी, क्योंकि इन में कोई तात्त्विक मौलिक भेद नहीं है जैसा हम आगे बतलायेंगे) के हृदय में अवस्थित आत्म उस ज्योति को ही मैं 'अमृतत्व' कहता हूँ।

एक उपनिषद्कार ने "अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते" (अविद्या से मृत्यु को पार कर विद्या से 'अमृत' को पाता है) कहा है तो दूसरा ऋषि कहता है – "सितासिते सरिते यत्र सङ्गते तत्र सुप्लुता सो दिवमुत्पतन्ति। ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते" – "अर्थात् सित (गङ्गा) और असित (यमुना) नामक दो नदियाँ जहाँ एक दूसरी में मिलकर संगम बनाती हैं वहाँ अपने शरीर का त्याग करने वाले धीर पुरुष उत्तम अवस्था में ऊपर उठकर अमृतत्व प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक-काल की पूरी लम्बी अवधि में अनेक विचारक ऋषि मृत्यु के एवं मृत्यु को जीत कर अमर हो जाने के सनातन प्रश्नों पर गम्भीरता से विचार कर रहे थे।

महाभारत-काल तक आते आते तो यह विचार इतने परिपक्व हो उठे थे कि तत्कालीन एक ऋषि सनत्सुजात मृत्यु की यथार्थता और अवश्यम्भाविता को भी चुनौती देने लगे थे। उस ऋषि के मत को व्यक्त करते हुए विदुर ने कहा था:—

धृतराष्ट्र कुमारो वै यः पुराणः सनातनः।
सनत्सुजातः प्रोवाच मृत्युर्नास्तीति भारत॥

—उद्योग पर्व अ० ४१ श्लो० २

"हे धृतराष्ट्र! अतीव पुराने और चिर-जीवी सनत्सुजात कहते थे कि 'मृत्यु' है ही नहीं।"
सनत्सुजात के इस मृत्यु-दर्शन को पूरी तरह समझ पाने के लिये धृतराष्ट्र के आग्रह करने पर विदुर ने ऋषि सनत्सुजात को स्मरण कर वहीं बुलाया। उनका स्वागत सत्कार करने के बाद धृतराष्ट्र ने उनसे पूछा:—

सनत्सुजात यदिदं शृणोमि न मृत्युरस्तीति तव प्रवादम्।
देवासुरा ह्याचरन् ब्रह्मचर्यममृत्यवे तत् कतरन्नु सत्यम्॥

—म० भा० अ० ४२ श्लो० २

"हे सनत्सुजात! मैंने सुना है कि आपका यह सिद्धान्त है कि "मृत्यु" नहीं होती है। उधर मैंने यह भी सुना और पढ़ा है कि मृत्यु होती तो है परन्तु उसको जीत कर अमर होने के लिये पुराने समय में देवों और असुरों ने ब्रह्मचर्य का पालन किया था— अब प्रश्न ही

बतलाइये कि इनमें कौन बात सत्य है।

सनत्सुजात ने उत्तर दिया:—

> उभे सत्ये क्षत्रियैतत्प्रविद्धि मोहान्मृत्युः सम्मतोऽयं कवीनाम् ।
> प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि तथाऽप्रमादममृतत्वं ब्रवीमि ॥
>
> —वही श्लोक ४

"हे क्षत्रिय ! यह दोनों ही बातें सत्य हैं। सभी विद्वान् सहमत हैं कि मोह से प्राणी की मृत्यु होती है। मैं भी प्रमाद को ही मृत्यु का कारण बतलाता हूँ और, इस प्रकार, अप्रमाद को 'अमृतत्व' बतलाता हूँ।"

आगे चलकर उन्होंने मृत्यु के कारणों और उस मृत्यु से छुटकारा पाकर अमर हो जाने के उपायों का विशद विवेचन कर यही निष्कर्ष रक्खा था कि यदि मनुष्य प्रमाद और आलस्य त्याग कर ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ संयमपूर्वक जीवन-यापन करे तो वह कभी नहीं मरेगा। श्रुति ने भी एक जगह यही कहा है कि ब्रह्मचर्य पालन करने वाले को "न तस्य रोगो न जरा न मृत्यु" न तो कोई रोग ही होता है न कभी बुढ़ापा आता है और न कभी उसकी मृत्यु ही होती है।

भारत के इन महामनीषी और ब्रह्म-वेत्ता ऋषि के इस मत से मिलता जुलता-सा मत ही प्रसिद्ध रसायन-शास्त्री डा० लाइनस पौलिङ्ग (Dr linus pouling) का भी है। डा० पौलिङ्ग को रसायन-शास्त्र की नवीन उपलब्धियों की खोजों के सम्मान में विश्व प्रसिद्ध नोबुल पुरस्कार भी मिल चुका है। डा० पौलिङ्ग ने १८ फरवरी सन् १९६० ई० के दिन अमेरिका के एक मशहूर लॉस एञ्जेलस

(los Ang l s) में कहा था- "Theoretically man is quite immortal His bodily tissues replace themselves He is a se f repairing machine and yet he g ts old and reasons for this are still a mystery" अर्थात् एक सिद्धान्त के रूप में मनुष्य बिल्कुल अमर है। उसके शरीर के तन्तु निरन्तर अपनी मरम्मत करते रहते हैं। वह एक स्वयं चालित मरम्मत मशीन है फिर भी वह बूढ़ा हो जाता है और मर भी जाता है। इस प्रकार उसके बूढ़ा हो जाने और मर जाने के कारण अभी तक एक रहस्य ही बने हुए हैं।

आगे चलकर डा० बीनिङ्ग ने कुछ कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा- One of the r asons for man s ageing was that he was constantly inflicting brutal 'insults' which it was not supposed to r ceive The result of these Constant recurrent insults is ag ing and death. As an example of these insults let me point out the smoking of cigaretts One packet of Cigarettes per day shortened life by one- fifth '
अर्थात् मनुष्य के बूढ़ा होने का एक कारण तो यह है कि वह अपने शरीर पर लगातार कुछ ऐसे घोर 'अत्याचार' करता रहता है जिनको सहने के लिये उसका शरीर बनाया ही नहीं गया है। लगातार बार बार किये गये इन अत्याचारों का परिणाम होता है बुढ़ापा और मृत्यु। इन अत्याचारों के एक उदाहरण के रूप में मैं

सिगरेट पीने की टेव को पेश करता हूं। प्रतिदिन पिया हुआ सिगरेट का एक पैकेट पीने वाले के जीवन-काल को उसके पांचवें भाग से कम कर देता है।

अमेरिका के एक शहर कैलीफोर्निया में स्थित "इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नालाजी"(The Institute of Technology) में किये गये प्रयोगों और शोधों को आधार बनाकर ही डा० जौनिंग ने अपना यह निष्कर्ष निकाला था।

भारतीय इतिहास के जिस काल में स्मृति-ग्रन्थों का प्रणयन किया गया था उस समय के एक महान् विचारक और विधि-शास्त्री राजर्षि मनु से भी मृत्यु क्यों होती है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए ऋषियों को मृत्यु के चार प्रमुख कारण बताये थे। मनु के अनुसार "अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्। आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति"– वेदों को न पढ़ना, सदाचार की विधियों का तिरस्कार आलस्य और प्रमाद के वश हो जाना और अन्न दोष (भोजन में असंयम)- यह चार कारण ही मनुष्य को मृत्यु के मुख में धकेल देते हैं।

प्राचीन ग्रन्थों की तो नींव ही मृत्यु और उससे छुटकारा पाकर अमर हो जाने की कामना पवित्र-भावों पर ही रखी हुई है। इन ग्रन्थों के प्रणेता ऋषियों ने अपने अपने युगों में इस सनातन विकट प्रश्न को उसके सच्चे यथार्थ और वास्तविक उत्तर की खोज-ढूंढ में उसके रहस्यों को परखते हुए रखा जाता था। अपनी अलौकिक प्रतिभा, अनन्त ज्ञान-साधना और दीर्घकालीन अनुभूतियों के बल पर इन ऋषियों ने जन्म और मृत्यु के बन्धन से निकल कर शाश्वत

मुक्ति पा जाने के विभिन्न साधनों की प्रतिष्ठा की थी। यह बात तो प्रायः सभी दर्शनकार मान कर चले थे कि जन्म लेने के बाद मृत्यु अनिवार्य है — उसे कोई भी नहीं टाल सकता। परन्तु उनके द्वारा बतलाये गये साधनों को अपने जीवन-काल में अपनाने और उन पर व्यवहार करने से मनुष्य मुक्ति पा जाता है — न तो उसका फिर जन्म ही होता है और, इस कारण न मृत्यु ही होती है।

दर्शन-शास्त्रों के प्रायः सभी पुरातन ऋषियों और आचार्यों ने जहाँ मनुष्य के भौतिक शरीर की चरम परिणति मृत्यु में ही मानी है और जीवन-काल में मुक्ति-लाभ के लिये किये गये साधनों का फल मृत्यु के उपरान्त ही माना है वहीं कुछ मध्ययुगीन सन्तों, नाथों और योगियों की एक स्पष्ट गम्भीर और अर्थपूर्ण वाणी हमें एक अनोखी और अलग-थलग बात कहती हुई सुनाई पड़ती है। इन लोगों का यह दावा था कि खास तरह के एक रस-रासायनिक संयोग से हम इस भंगुर देह को भी अजर अमर बना सकते हैं। धार्मिक जगत् में इसे कायायोग का रसेश्वर मत कहते हैं। आगे किसी एक परिच्छेद में हम इस पर प्रकाश डालेंगे।

लगभग ढाई हजार वर्ष पहिले हिमालय की तराई में बसे हुए शाक्य गण-राज्य की राजधानी कपिलवस्तु में राजकुमार सिद्धार्थ ने एक दिन नगर-पथ पर कुछ लोगों को अपने कन्धों पर एक मृतक के शव को ले जाते हुए देखा था। इस दृश्य को देखते ही सिद्धार्थ के मन को अनेक प्रश्नों ने आकुल कर डाला था। इस मनुष्य को जो थोड़ी देर पहिले तक चलता, फिरता, बोलता और अन्य चेष्टाएं कर रहा था, अचानक क्या होगया? जब लोगों ने उन्हें बतलाया कि

उसकी मृत्यु हो गई है और अब उसके सदा के लिये निश्चेष्ट शरीर को हम जला देने के लिये ले जा रहे हैं और यह भी कि एक दिन उनकी भी इसी प्रकार मृत्यु हो जावेगी, सिद्धार्थ का मन उद्विग्न हो उठा। वह दिन रात यही सोचने लगे कि क्या ऐसा कोई उपाय नहीं है जिससे मनुष्य की कभी मृत्यु ही न हो ? इस प्रश्न ने उन्हें इतना झकझोरा कि एक दिन आधीरात को वह अपनी युवती पत्नि और अबोध शिशु एवं राज-पाट को छोड़ कर वन में चले गये जिससे कि वह मृत्यु पर विजय पाने के साधन खोज कर सकें। बर्षों तक कठिन तपश्चर्या और ध्यान-समाधि के बाद उन्होंने चार आर्य-सत्यों पर आधारित अष्टाङ्गिक मार्ग का प्रतिपादन किया। यह मानव-जीवन की एक आचार-संहिता थी और आगे आने वाली शताब्दियों में करोड़ों व्यक्तियों ने इसे स्वीकार कर उसपर अमल भी किया। परन्तु हाय रे मनुष्य की विवशता ! इतनी दौड़धूप करने और कष्ट सहने पर भी सिद्धार्थ जो तपश्चर्या के बाद बुद्ध बन गये थे मृत्यु को उनके अंतिम स्थान से तिलमात्र भी न हटा सके। जैसा कि चिर-काल से होता आया है मृत्यु ने उनके इन पुण्यवाणी पर एक विद्रूप की हंसी हंसदी और अपना हाथ बढ़ाकर एक दिन स्वयं उनको अपने निर्मम अंक में समेट लिया। मृत्यु अजेय ही बनी रही।

अपनी अंतिम देह पर मृत्यु के दुर्निवार और स्वयंसिद्ध अधिकार को रत्तीभर भी हटा पाने में विफल मनुष्य ने अमर होने की अपनी उत्कट अभिलाषा की पूर्ति के लिये पुत्र और बान्धव ढूंढे। धन वैभव और कोई वस्तु बना कर उसने संसार में एक कुलदेव स्मारक स्थायी बना लिया था और चाहता था कि आगे ही उसका

भौतिक शरीर मृत्यु के खूनी पञ्जों में दबकर चूर चूर होजाय और उसे वह रोक भी नहीं सकता— उसके अपने जीवन-काल में उसके शरीर को जो नाम दिया गया था और जिस नाम से उसने संसार में रह कर कुछ काम किया था उस नाम के आधार पर ही वह अमर बना रहे। इसी उद्देश्य को लेकर उसने अनेक देशों की विजय-यात्राएं की और उन विजयों की स्मृति को स्थायी बनाये रखने के लिए उसने अपने उस नाम को ईंट पत्थर और चूने में बाँध कर जगह जगह विजय-स्तम्भ, स्तूप और शिलालेख स्थापित करा दिये। महाकाल के सिर पर पैर रखकर उसने अपने नाम पर सम्वत् चलाये। महा-काव्यों की रचना कर उसने अपने अस्तित्व को शब्दों और छन्दों के मधुर और स्थायी सूत्रों में गूँथा। कूए, धर्मशालाएं और मन्दिर बनवाये और ताज-महल जैसे शानदार और कला-पूर्ण भवनों का निर्माण करवाया। उसने पहाड़ों की गुफाओं में घुस कर छैनी और हथौड़े के बल पर पत्थरों के कठिन दिलों पर अपनी हस्ती को खोदा। जीवित देह की अपेक्षा कुछ अधिक कड़े आवरणों में अंकित उसके इन "अमर शरीरों" को मृत्यु के अनुचर महाकाल ने कुछ थोड़ी अधिक छूट तो अवश्य ही दी। परन्तु अपनी निशानों को समय समय पर मिटाते रहने के अपने परापूर्व और अक्षुण्ण अधिकार को ही लेकर इन कृतियों को वह अधिक दिनों तक न सह सका। "कौन हूं मैं एक क्षण में कहीं कुछ भी नहीं" का नारा बुलन्द करते हुए उसने इन सबको समय समय पर एक ही वार में मिटा डाला। कुछ चिह्नों को वह अपनी जड़ों पर आज भी छोड़े हुए है। परन्तु जब भी वे चाहेगा तब ही उनको धूल में मिला कर

रख देगा। सृष्टि के श्रेष्ठतम प्राणी कहे जाने वाले बुद्धिशील मानव की यह कैसी विडम्बना है!

तो क्या मृत्यु और काल के सामने मानव हमेशा ही हार पर हार खाता रहेगा? महाकाल के लम्बे चौड़े पैमाने पर एक अत्यन्त क्षुद्र और नगण्य सा बिन्दु बना हुआ उसका व्यक्तिगत जीवन अस्तित्व क्या कभी अपने आपको फैलाकर उस पैमाने के अन्तिम छोर को आत्मसात् नहीं कर सकेगा? पिछले हजारों हजार वर्षों से इसकी स्थूल पार्थिव देह का प्रत्येक कण अमर हो जाने की एक अन्तर्निहित भूख से आकुल रहता चला आया है – क्या उसकी यह भूख सर्वथा अर्थहीन और निराधार तो नहीं है? हम सब और ऐसे ही कितने चुनते अनेक मूक प्रश्नों की एक भीड़ सी खड़ी कर आज फिर यह चिरन्तन चिर-प्रश्न मृत्यु को जीतकर अमर होजाने का प्रश्न हमारे दरवाजों को खटखटाने चला आया है – इस आशा में कि शायद आज हम हमारे बड़े बड़े वैज्ञानिक-ज्ञान के बलपर उसका एक उचित हल खोज सकें। आज हमने हमारे प्रतिभा-बल पर बनने वाले एक नई खोज लेली है जहाँ आकर हमने अपने अनोखे आविष्कार की विजय को स्पष्ट कर विज्ञानरूपी महादानव जिन को सामने खड़ा कर लिया है। अपने हाथों को जोड़कर हमारी सेवा करने की मुद्रा में खड़ा हुआ यह जिन हमारी सभी इच्छाओं और अभिलाषाओं की पूर्ति करने को तत्पर है। अच्छा होगा कि मृत्यु और अमरत्व के इस सनातन दुःसाध्य प्रश्न को आज हम इस अनुपम शक्ति-शाली जिन से ही पूछें।

विश्व विचारकों, धर्मों और समाज के बड़े बूढ़ों को अपने

तत्त्वोन्मेषक प्रज्ञा से लेकर सत्य के वास्तविक स्वरूप की झलक देने वाली विज्ञान की आधुनिकतम उपलब्धियों से इस चिरन्तन प्रश्न की मीमांसा माँगने के पहिले एक नजर में यह देख लेना जरूरी होगा कि अमर हो जाने की यह सनातन भूख किसी ठोस आधार पर खड़ी है या नहीं। निश्चय ही; यह एक खोखली और अकारण सनक तो नहीं है। यदि ऐसा होता तो हजारों वर्षों से लगातार असफलता की बार बार ठोकरें खा खाकर यह कभी की खत्म हो चुकी होती। सिर्फ एक यही बात कि बीते हुए प्रत्येक युग में हजारों विशिष्ट व्यक्तियों, चिन्तकों और सन्तों ने मनुष्य को अमर बनाने के मार्ग की खोज निकालने को ही अपने जीवन का चरम ध्येय बनाया था, और जो ध्येय आज भी वैज्ञानिक-ज्ञान-बल में बढ़े चढ़े हमारे वर्तमान युग के उत्कृष्ट विचारकों की नींद हराम किये हुए है— केवल यही एक बात इसके सत्य पर आधारित होने की पुष्टि करती है।

दार्शनिक जगत् में और दर्शन-ग्रन्थों की लम्बी परम्परा के वर्तमान वाह्य विज्ञान-जगत् में, कार्य-कारण सम्बन्ध” का सिद्धान्त सर्वमान्य रहता चला आया है। कार्य अपने कारण के अनुरूप ही होता है; कारण के समान विशिष्ट गुण-धर्म कार्य में उभर आते हैं जैसे ही वह उतरें बिखरे हुए रूपों में। कार्य के गुण-धर्मों को देख कर उसके मूल कारण के रूप और गुण धर्म का अनुमान लगाया जा सकता है। हमारे मन, प्राण और शरीर में— यही नहीं हमारे शरीर के परक प्रत्येक कण में— अमर हो जाने की एक दुर्दम्य लालसा, एक अनबुझी प्यास बसी हुई है जो हमें इस दिशा में

निरन्तर प्रयास करते रहने को उकसाती रहती है। हम इसके अस्तित्व से चिपटे रहना चाहते हैं।

अमर होजाने और हमेशा बने रहने की हमारी यह आतुर आकांक्षा ही हमारे शारीरिक अस्तित्व के एक अमर स्रोत की ओर स्पष्ट संकेत करती है। हमारी इस आकांक्षा का सिर्फ एक ही अर्थ है और वह यह कि जिन मूल उपादानों से हमारे शरीर बने हुए हैं वह स्वयं चिर-स्थायी और अविनश्वर हैं। हमारे व्यक्तिगत शरीरों के निर्माण-कारी अमर होते हुए वह हमेशा अपने मूल-स्वरूप में ही प्रतिष्ठित रहना चाहते हैं। उनकी यह आतुरता ही एक सामूहिक रूप में हमारी अपनी आतुरता है।

स्पष्ट ही अमर हो जाने की हमारी यह आकांक्षा सहज और स्वाभाविक है हमारे अपने शरीरों में ही अन्तर्निहित है। इसके वैज्ञानिक रूप को पूरी तौर पर समझने के लिये हमें पहिले अपने शरीरों की भौतिक बनावट का एक सूक्ष्म और तल-स्पर्शी अध्ययन करना होगा। आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों के प्रकाश में हमारी भौतिक देह का एक सर्वांगपूर्ण तार्किक विश्लेषण करने पर ही हम उसको बनाने वाले मूल उपादानों के स्वरूप और गुण-धर्मों को ज्ञात करेंगे और इस जानकारी के बल पर ही हम अमरत्व के शुद्ध स्वरूप को भी बोध-गम्य कर सकेंगे।



दूसरा परिच्छेद

हमारे शरीर की रचना

हमारे अपने शरीरों की बाहरी रूप रेखाओं उनके अवयव संगठनों और आकार-विस्तारों से हम सब भली भाँति परिचित हैं। चोटी से लेकर एड़ी तक। हमारे सब के शरीर अपनी बनावटों में एक जैसे ही होते हैं। लम्बाई मोटाई, अथवा किसी एक खास अङ्ग के मुताबिक होने के कारण उनमें परस्पर जो कुछ भी दिखावटी अन्तर होते हैं वह केवल हमारे शरीरों के अन्तर्वर्ती ग्रन्थि-रसों के कम या अधिक होने के कारण अथवा किसी बीमारी या चोटों के कारण उनमें से किसी एक या अधिक के बढ़जाने के कारण ही होते हैं।

हमारे शरीरों के ढांचे मुख्यतः हाड़ और मांस के ही बने होते हैं जिनको एक दूसरे से जोड़ती हुई कुछ धमनियाँ अथवा नाड़ियाँ होती हैं जो अपने भीतर रक्त का संचालन करती हुई सम्पूर्ण शरीर को पुष्टि और वृद्धि देती रहती हैं।

हमारे व्यक्तिगत शरीर स्व-चालित, सुव्यवस्थित और आत्म-निर्भर होते हैं। हमारे सिरों के ऊपरी भागों में, पेटों और पँसुली की हड्डियों में सुरक्षित, मस्तिष्क होते हैं जो अपने आश्चर्यजनक करिश्मों के कारण समूचे शरीर के तमाम क्रिया-कलापों का संचालन करते हैं। किसी मौके पर क्या करना चाहिए इस प्रकार

हम ऑक्सिजन खाता है और १८००० गैलन पानी या अन्य द्रव पदार्थ पीता है। इस ऑक्सिजन और खाद्य से ही उस अथाह शक्ति सम्भालता अपनी घूमकर शरीर की समस्त कोशाओं को पहुँचा देती रहती है।

हमारे शरीर सूक्ष्म सूक्ष्म अवयवों के संयोग से बने होते हैं जिन्हें कोषाणु (cells) कहते हैं। न केवल हम मनुष्यों के ही अपितु समस्त प्राणियों के शरीर एक मात्र कोषाणुओं के ही बने हुए हैं। इन कोषाणुओं के आधार पर ही प्राणियों को दो वर्गों में बांटा गया है- एककोषाणुधारी (unicellular) और बहुकोषाणुधारी (multi cellular)। पहिले वर्ग के प्राणी हैं अमीबा (amoeba) और ऐल्गी (algae) इत्यादि और दूसरे वर्ग के प्राणी हैं मनुष्य घोड़ा और गाय इत्यादि।

मनुष्य के शरीर को बनाने वाले कोषाणुओं का व्यास १/२५०० इञ्च से लेकर १/३०० इञ्च तक होता है। प्रत्येक कोषाणु में कोषसार (protoplasm), केन्द्रक (nucleus) और आकर्षण मण्डल एवं आकर्षण बिन्दु (centrosome and centriole) होते हैं।

कोषसार (protoplasm)- प्रत्येक कोषाणु का यह एक मुख्य भाग होता है जो कि समूचे कोषाणु में भरा रहता है। यह एक अर्द्ध-द्रव (ठोस और द्रव के बीच के रूप का) चिकना पदार्थ होता है। वैज्ञानिकों के अनुसार इसकी अवस्था में परिवर्तन होता रहता है। यह कभी स्वच्छ कभी दानेदार, कभी रेशेदार (जालों के रूप में) और कभी झागदार दिखाई देता है। इसके दो रूप होते हैं जालदार और स्वच्छसार। भिन्न भिन्न कोषाणुओं में इन दोनों भागों के आपसी अनुपात में भेद होता है।

नवजात कोषाणुओं में रसकणसार प्रायः अधिक होता है और जालकसार बहुत कम। ज्यों ज्यों कोषाणुओं के आकार में वृद्धि होती जाती है त्यों त्यों जालकसार की मात्रा बढ़ती जाती है और रसकणसार की मात्रा उसी अनुपात में कम होती जाती है।

कोषकसार जीवन का मूल तत्व है। उसके जीवित और सक्रिय रहने पर ही शरीर में जीवन के लक्षण पाये जाते हैं। उसके निर्जीव होजाने पर शरीर का जीवन भी नष्ट हो जाता है।

केन्द्रक Nucleus

यह गोल या अण्डाकार होता है और प्रायः कोषाणु के बीच में पाया जाता है। यह मांस तत्व (proteins) जाति पदार्थों से बना होता है। इसके मुख्य पदार्थ का नाम न्यूक्लीन है। इसमें साधारण से फोस्फोरस का भाग अधिक होता है। कभी कभी लोह भी पाया जाता है।

कोषाणु के पोषण और फिर उसके विभाजन का काम यह केन्द्रक ही करता है। यदि किसी एक कोषाणु से उसके केन्द्रक को पृथक कर दिया जाय तो उस कोषाणु की मृत्यु ही होजावेगी।

आकर्षण मण्डल Attraction sphere

यह कोषाणुओं के विभाजन में मार्गप्रदर्शन का काम देता है। यह कोषाणुओं की कर्षशक्ति का केन्द्र होता है।

तन्तु या पेशीजाल Tissues

एक जैसे आकार और एक जैसी ही क्रिया करने वाले कोषाणु जब आपस में मिलकर शरीर के अंगों को बनाते हैं तब उनके इस समुदाय को तन्तु या पेशीजाल कहते हैं। यह तन्तु उन कोषाणुओं

की एक या अधिक पंक्तियों से बने होते हैं। एक प्रकार के तन्तु ऐसे होते हैं जिन्हें संयोजक तन्तु (Connective tissues) कहते हैं। यह तन्तु ही शरीर के भिन्न भिन्न तन्तुओं और उनके भागों को एक दूसरे से जोड़ते हैं। शरीर में अन्य तन्तुओं की अपेक्षा यह तीन तरह के होते हैं—

(१) सौत्रिक तन्तु (Fibrous tissues.)

(२) तरुणास्थि (Cartilag.)

(३) अस्थि (Bones.)

कुछ विद्वानों के मत से रक्त भी संयोजक तन्तुओं के ही अंतर्गत आता है।

सौत्रिक तन्तुओं के ४ भेदों में एक क्षेत्रिल (areolar tissues) होते हैं। यह स्थिति-स्थापक (elastic) होते हैं और इनका एक गुण यह भी होता है कि वे अपने आकार को विस्तृत कर सकें। शरीर के विभिन्न अंगों को बराबर यही जोड़ते हैं। शरीर के किसी किसी भाग में यह तन्तु वसा कोषाणुओं से युक्त होते हैं। तब उन्हें वसा युक्त तन्तु (adipose tissues) कहते हैं। इन तन्तुओं में भरा हुआ वह वसा अपने शरीरवाले प्राणी के जीवन-काल में तरल कर दे रखता है। उस प्राणी के मरजाने पर वह जम जाता है। स्त्रियों की त्वचा में वसा की मात्रा अधिक होती है।

तरुणास्थि Cartilage

इसमें रक्त का संचार नहीं होता। यह कठिन और स्थिति-स्थापक (elastic) होती है। इसका कोई भी एक टुकड़ा देखने में पारदर्शी दीख के अन्दर मौलिका मिले हुए सफेद और कहीं कहीं

पीला दिखलाई देता है। भ्रूणावस्था में शरीर का कंकाल तरुणा-स्थियों का ही बना होता है जो क्रमशः अस्थि में परिवर्तन हो जाती हैं।

अस्थि Bone

यह कठिन और दृढ़ होती है, किन्तु इसमें कुछ स्थिति-स्थापकता (elast cits) भी होती है। इसके भीतर मज्जा भरी रहती है और इसके पोषण के लिये रक्तनलिकायें भी होती हैं। इसका रंग बाहर की ओर तो सफेद होता है जिसमें पीले और गुलाबी रंग की आभा मिली रहती है। काटने पर यह भीतर से गहरी लाल दिखाई देती है। इसको कटकर सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र से देखने पर इसके दो भाग स्पष्ट दिख पड़ते हैं। एक भाग की रचना सघन होती है उसे संहत भाग(Compact layer) कहते हैं। दूसरे की रचना कुछ विच्छिन्न और सछिद्र होती है उसे सुषिर भाग (spongy layer) कहते हैं। संहत भाग बाहर की ओर एवं सुषिर भाग भीतर की ओर होता है।

मनुष्य के शरीर का कंकाल तरुणास्थि (Cartilage और) अस्थि(bones) का ही बना होता है जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं हड्डियाँ सजीव तन्तु या ऊतक (tissues) हैं। इन के भार का ५०% पानी होता है। शेष का दो तिहाई भाग खनिज लवणों का अजैविक पदार्थ होता है और एक तिहाई कार्बनिक या जान्तव पदार्थ होता है।

कार्बनिक या जान्तव पदार्थ के कारण ही अस्थि में स्थिति स्थापकता (elasticity) होती है और खनिज लवणों या अकार्बनिक पदार्थ के कारण इसमें काठिन्य और दृढ़ता होती है। कार्बनिक

की एक या अधिक पंक्तियों से बने होते हैं। एक प्रकार के तन्तु ऐसे होते हैं जिन्हें संयोजक तन्तु (Connective tissues) कहते हैं। यह तन्तु ही शरीर के भिन्न भिन्न तन्तुओं और उनके भागों को एक दूसरे से जोड़ते हैं। शरीर में अन्य तन्तुओं की अपेक्षा यह तीन तरह के होते हैं:—

(१) सौत्रिक तन्तु (Fibrous tissues.)
(२) तरुणास्थि (Cartilage)
(३) अस्थि (Bones.)

कुछ विद्वानों के मत से रक्त भी संयोजक तन्तुओं के ही अंतर्गत आता है।

सौत्रिक तन्तुओं के ४ भेदों में एक तान्तविक (areolar tissues) होते हैं। यह स्थिति-स्थापक (elastic) होते हैं और इनका एक गुण यह भी होता है कि ये अपने आकार को विस्तृत कर सकें। शरीर के विभिन्न अंगों को बराबर यही जोड़ते हैं। शरीर के किसी किसी भाग में यह तन्तु वसा कोषाणुओं से युक्त होते हैं। तब इन्हें वसा युक्त तन्तु (adipose tissues) कहते हैं। इस तन्तुओं में भरा हुआ यह वसा पदार्थ शरीरधारी प्राणी के जीवन-काल में तरल रूप में रहता है। पर प्राणी के मरजाने पर यह जम जाता है। अस्थियों की मज्जा में वसा की मात्रा अधिक होती है।

तरुणास्थि Cartilage

इसमें रक्त का संचार नहीं होता। यह कठिन और स्थिति-स्थापक (elastic) होती है। इसका कोई भी एक टुकड़ा देखने में पारदर्शी सीप के समान नीलिमा लिये हुए सफेद और कहीं कहीं

पीला दिखलाई देता है। भ्रूणावस्था में शरीर का कंकाल तरुणा-स्थियों का ही बना होता है जो क्रमशः अस्थि में परिणत हो जाती है।

अस्थि Bone

यह कठिन और दृढ़ होती है, किन्तु इसमें कुछ स्थिति-स्थापकता (elasticity) भी होती है। इसके भीतर मज्जा भरी रहती है और इसके पोषण के लिये रक्तनलिकायें भी होती हैं। इसका रंग बाहर की ओर तो सफेद होता है जिसमें नीले और गुलाबी रंग की आभा मिली रहती है। काटने पर यह भीतर से गहरी लाल दिखाई देती है। इसको काटकर सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र से देखने पर इसके दो भाग स्पष्ट दिख पड़ते हैं। एक भाग की रचना सघन होती है उसे संहत भाग(Compact layer) कहते हैं। दूसरे की रचना कुछ विच्छिन्न और सच्छिद्र होती है उसे सुषिर भाग (spongy layer) कहते हैं। संहत भाग बाहर की ओर एवं सुषिर भाग भीतर की ओर होता है।

मनुष्य के शरीर का कंकाल तरुणास्थि (Cartilage और) अस्थि (bones) का ही बना होता है जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं। हड्डियाँ सजीव तन्तु या ऊतक (tissues) हैं। इन के भार का २०% पानी होता है। शेष का दो तिहाई भाग खनिज लवण या अकार्बनिक पदार्थ होता है और एक तिहाई कार्बनिक या आमिष पदार्थ होता है।

कार्बनिक या आमिष पदार्थ के कारण ही अस्थि में स्थिति स्थापकता (elasticity) होती है और खनिज लवणों या अकार्बनिक पदार्थ के कारण उसमें काठिन्य और दृढ़ता होती है। कार्बनिक

पदार्थ में एक प्रकार के प्रोटीन तन्तु होते हैं जिन्हें कोलाजिन तन्तु कहते हैं। खनिज लवणों या अकार्बनिक पदार्थ में खटिक(Calcium) के फास्फेट, क्लोराइड, फ्लोराइड और कार्बोनेट लवण होते हैं। कुछ मैग्नीशियम के लवण भी होते हैं। हमारे शरीर में मिलने वाले कैल्शियम का अधिकांश भाग हड्डियों में ही मिलता है। रुधिर के थक्का बनने, पेशियों के संकुचन तथा हृदय की धड़कन के लिये भी कैल्शियम की आवश्यकता होती है।

कुछ भागों को छोड़कर सारी अस्थि अस्थ्यावरक कला (Periosteum) से ढँकी रहती है। इसके दो स्तर होते हैं जो परस्पर जुड़े रहते हैं। बाहरी स्तर संयोजक तन्तुओं का बना होता है और भीतरी स्तर में सूक्ष्म परन्तु स्थिति स्थापक (फैलकर बढ़ने वाले और फिर सिकुड़कर अपनी पहिली स्थिति में ही आजाने वाले ठीक रबड़ की तरह) सूत्रों का जाल सा जैसा रहता है।

ऊपर हमने जिन दो मुख्य भागों का वर्णन किया है उनमें स्पंजी या सुषिर भाग (Spongy layer) मुख्यतया लम्बी हड्डियों के सिरों में तथा कशेरुक और पसलियों में होता है। इसे लाल मज्जा भी कहते हैं।

नये जन्मे हुए बच्चों की एवं तरुणों की हड्डियों में अस्थ्यावरक कला दृढ़ और मोटी होती है और रक्त से परिपूर्ण रहती है। इस कला के नीचे अस्थिजनक तन्तु (Ostoogenetic tissue) का एक स्तर रहता है जिसमें अस्थ्युत्पादक कण (Osteoblast) होते हैं। इनको लाल रुधिर कणिकायें भी कहते हैं जो प्रति मिनट निरन्तर बनती रहती हैं। इन्हीं कणों अथवा कणिकाओं से अस्थियों का

विकास होता है। आयु अधिक हो जाने पर यह अस्थिजनक तन्तु (Osteogenetic tissue) नष्ट हो जाते हैं और अस्थ्यावरक कलायें पतली होजाती हैं। वस्तुतः अस्थियों के जीवन और विकास का स्रोत यह कला ही है। इस कला के नष्ट या क्षत होजाने पर अस्थियों में क्षय उत्पन्न हो जाता है।

जैसा कि हम ऊपर भी लिख आये हैं जन्म के समय प्रत्येक बालक के शरीर में हड्डियों की संख्या ३०० होती है किन्तु उसके बड़े होने पर परस्पर पूरी तौर पर मिल जाने के कारण उसके वयस्क शरीर में केवल २०६ हड्डियां ही रह जाती हैं। कशेरुक दण्ड में भी आरम्भ में ३३ कशेरुक होते हैं किन्तु बड़े होने पर इनकी संख्या में भी ७ की कमी हो जाती है क्योंकि तीन कशेरुकों के मिल जाने से त्रिक अथवा त्रिकास्थि (sacrum) बन जाता है और ४ के मिलने से पुच्छास्थि या अनुत्रिकास्थि (Coccyx) बनता है।

जांघ की हड्डी लम्बी और भारी भरकम होती है। बालकों में इस प्रकार की लम्बी हड्डियों के सिरों पर टोपी जैसी रचनायें होती हैं जिन्हें एपिफाइसिस कहते हैं। एपिफाइसिस पर ही इन हड्डियों के लम्बाई में बढ़ने का भार होता है। हड्डी तथा एपिफाइसिस के बीच कार्टिलेज या उपास्थि का एक मोटा पट्टा रहता है। १५ वर्ष की आयु के बाद यह नष्ट होने लगता है और २५ वर्ष की आयु तक यह पूरी तौर पर समाप्त हो जाता है। तब एपिफाइसिस लम्बी हड्डी से मिल जाती है और उसका बढ़ना सदा के लिये रुक जाता है।

पेशी तन्तु Muscular tissue

शरीर में त्वचा के नीचे वसा और आवरणी से आच्छादित मांस

पेशियों का स्तर होता है। यह तन्तु लाल वर्ण के लम्बे सूत्रों के गुच्छों से बने होते हैं जिनमें संकोच का गुण होता है तथा जो बाहर की ओर संयोजक तन्तु द्वारा परस्पर बँधे रहते हैं। इनके दो प्रमुख वर्ग माने गये हैं— (१) स्वतन्त्र (Involuntary) (२) परतन्त्र (voluntary)।

सूक्ष्म रचना की दृष्टि से पेशियाँ तीन प्रकार की होती हैं—

(१) रेखांकित (striated) परतन्त्र (skeletal)

(२) रेखांकित (striated) हृदिक (cardiac)

(३) अरेखांकित (unstriated) या स्वच्छ (plain)

परतन्त्र पेशी— यह पेशी सूत्रों के गुच्छों (fasciculi) के सामान्य तन्तु के निर्मित आवरण द्वारा परस्पर आबद्ध होने से बनती है।

पेशी सूत्र— यह आकार में त्रिपार्श्व (तीन कोणों के) या वृत्ताकार होते हैं और इनकी लम्बाई लगभग १ इन्च तथा व्यास १/२० इन्च होता है। पेशीसूत्र का कलेवर कुछ तात्विक संकोचशील द्रव्य (essential contractile substance) से युक्त सूत्र आवरण नामक स्थिति-स्थापक कोषाणु से बना होता है। स्तनधारी जीवों में, इसकी भीतरी पीठ पर अण्डाकार केन्द्र देखे जाते हैं जिन्हें पेशीकण (muscle corpuscles) कहते हैं। मछली के जीवन-काल में सूत्रावरण अपने भीतर के संकोचशील द्रव्य से संयुक्त रहता है। पेशी के भीतर इसके अन्तः आवरण में केशिकाओं का जाल फैला रहता है। बड़ी बड़ी धमनियाँ और शिराएँ केवल परिसूत्रावरण तक रहती हैं उसके भीतर नहीं जा सकतीं। नाड़ियाँ भी वहाँ बहुत

सूक्ष्म कणों में फैली रहती हैं।

स्वतन्त्र पेशी:— यह अरेखांकित होती है और बेलनाकार कोषाणुओं से बनी होती है। ये कोषाणु समूहों में स्थित रहते तथा संयोजक द्रव्य द्वारा परस्पर जुड़े रहते हैं। ये समूह फिर बड़े बड़े पुञ्जों में एकत्रित हो जाते हैं जो परस्पर सामान्य संयोजक तन्तु द्वारा बँधे रहते हैं

स्वतन्त्र पेशी के सूत्र लम्बे, बेलनाकार केन्द्रक युक्त कोषाणुओं के रूप में होते हैं जिनकी लम्बाई लगभग १/२५ से १/३ इंच तक तथा चौड़ाई १/५०० इंच होती है। इसकी रचना सामान्य होती है और इसके कोषावरण में संकोचशील द्रव्य भरा रहता है। इस द्रव्य में बहुत हल्की लम्बी रेखाएं होती हैं जो इस द्रव्य के सूत्रकाणुओं के विभाग को सूचित करती हैं। इसके भीतर एक अण्डाकार या दण्डाकार केन्द्रक होता है। यह पेशियाँ श्वास-नलिका, श्वास प्रणालिकाएं एवं फुफ्फुस के वायुकोषों में, पुरस्थकोषणी में, पित्त नलिकाओं में, मूत्र-मार्ग में, गर्भाशय में, योनि और वृषण में, शुक्र-कोष और पौरुषग्रन्थि में, मूत्रवाहिका में, प्लीहा के कोष में, त्वचा की स्वेद-ग्रन्थियों में, धमनियों में, शिराओं और लैस सम्बान में रहती हैं।

पेशीतन्तु का कार्य:— पेशीतन्तु शरीर में गति उत्पन्न करते हैं। शरीर में जितनी भी चेष्टाएं होती हैं वह सब पेशियों के आधार पर ही होती हैं।

नाड़ी तन्तु Nervous tissue

सूक्ष्म रचना की दृष्टि से नाड़ी तन्तु के चार मुख्य भाग होते हैं—

(१) नाड़ी कोषाणु (nerve cells)

(२) नाड़ी सूत्र (nerve fibres)

(३) नाड्याधार कोषाणु (neuroglia cells)

(४) नाड्याधार सूत्र (neuroglia fibralets)

नाड़ी कोषाणु– यह नाड़ी तन्तु का विशिष्ट अवयव है जो मस्तिष्क के केन्द्रों तथा अन्यों में पाये जाते हैं। इन कोषाणुओं से जो लम्बे लम्बे प्रसार निकलते हैं उन्हें नाड़ीसूत्र कहते हैं। मस्तिष्क का श्वेत भाग इन्हीं का बना हुआ है। इस सूत्र के एक भाग को अक्ष सूत्र या अक्ष (axon) कहते हैं। अधिकतर कोषाणुओं में उनके कोनों से अनेक सूत्र निकलते हैं। इनमें से एक तो अक्ष बन जाता है। बाकी सब सूत्र अनेक शाखाओं में विभक्त हो जाते हैं। इन शाखा-सूत्रों को वृक्ष (dendron) कहते हैं। यह अपने समीपवर्ती कोषाणु के चारों ओर फैले रहते हैं।

कोषाणु का भाग वृक्ष और अक्ष सब मिल कर नाड्यणु (neurons) कहलाते हैं। नाड्यणु के वृक्ष सूत्र भी शाखाओं की तरह फैले रहते हैं। इनके द्वारा कोषाणु में उत्तेजना आती है और अक्ष के द्वारा बाहर जाती है।

नाड्याधार वस्तु– यह नाड़ी तन्तु की आधार-भूत वस्तु है जो कोषाणुओं और सूत्रों से बनी होती है। इसके सूक्ष्म सूत्रों के जालक नाड़ी-कोषाणुओं और सूत्रों के बीच में फैले रहते हैं तथा उनको आश्रय प्रदान करते हैं।

मांस पेशी के गुण धर्म

सभी मांस पेशियों में तीन विशिष्ट गुण धर्म पाये जाते हैं–

(१) उत्तेजनीयता (irritability)

(२) संकोचशीलता (contractability)

(३) वाहकता (conductivity)

किसी बाह्य साधन (उत्तेजक) की क्रिया के परिणाम स्वरूप अपने भीतर कुछ परिवर्तनों के रूप में प्रतिक्रिया उत्पन्न करने की शक्ति कुछ तन्तुओं में होती है। यह परिवर्तन स्थूल (जैसे पेशियों में) एवं सूक्ष्म (जैसे नाड़ियों में) दोनों प्रकार के हो सकते हैं। दूसरे शब्दों में उत्तेजनीयता कुछ जीवित कोष-सार (Protoplasm) का ऐसा गुणधर्म है जिसके कारण कोषकों या उत्तेजकों से प्रभावित होने पर उसमें कुछ विशिष्ट भौतिक या रासायनिक परिवर्तन होते हैं।

संकोचशीलता– किसी तन्तु में उत्तेजक की क्रिया के परिणाम स्वरूप आकार में परिवर्तन करने की शक्ति को संकोच शीलता कहते हैं। यह कुछ जीवित कोष-सार का ऐसा गुणधर्म है जिसके कारण कोषाणु किसी उत्तेजक से प्रभावित होने पर अपना आकार परिवर्तित करने में समर्थ होता है।

पेशियों के संकोच के समय पेशी में विद्युत् सम्बन्धी परिवर्तन भी होता है। इस समय शक्ति का प्रादुर्भाव केवल ताप के रूप में ही नहीं होता, बल्कि अत्यन्त सूक्ष्म परिमाण में विद्युत भी प्रकट होती है।

पेशी का स्वाभाविक संकोच Muscle tonus

संकोच और प्रसार के अतिरिक्त सजीव पेशी सदैव या निरन्तर संकोच की स्थिति में स्वभावतः रहती है जो सामान्यतः अल्पतम

होता है और समय समय पर परिवर्तित होता रहता है। इसे पेशी का स्वाभाविक संकोच (Muscle tonus) या स्थिति जन्य संकोच (Postural contraction) कहते हैं। पेशियों के निरन्तर स्वाभाविक संकोच के कारण शरीर में यथेष्ठ परिमाण में ताप उत्पन्न होता है। यह तापोत्पत्ति का महत्वपूर्ण साधन है।

पेशी संकोच के समय प्रादुर्भूत शक्ति— जब पेशी संकुचित होती है तब शक्ति का प्रादुर्भाव निम्न रूपों में होता है—

(१) ताप की उत्पत्ति

(२) वैद्युत् शक्ति का विकास

(३) बाह्यक्रिया की परिसमाप्ति

इन तीनों प्रकार की शक्ति का मूल कारण संकोच के समय होने वाले रासायनिक परिवर्तन हैं। इन परिवर्तनों के क्रम में जटिल अणुओं का विश्लेषण होता है और उनसे साधारण अणु बनते हैं। इस प्रकार जटिल अणुओं के परमाणुओं को परस्पर धारण करने वाली रासायनिक या आभ्यन्तरिक शक्ति मुक्त होकर उपर्युक्त तीनों रूपों में प्रादुर्भूत होती है।

कुल शक्ति का २५% से ३३% (प्रतिशत) तक कार्य रूप में परिणत होता है। व्यायाम करने वाले व्यक्तियों में यह अधिक और सामान्य व्यक्तियों में कम होता है। सम्पूर्ण शक्ति का जितना भाग कार्यरूप में उपयुक्त होता है उसे यन्त्र सामर्थ्य (Mechanical efficiency) कहते हैं। भाप से चलने वाले इन्जिन जहाँ ८ से १० प्रतिशत तथा पेट्रोल से चलने वाले इन्जिन २० प्रतिशत ही शक्ति का उपयोग कार्य में कर पाते हैं, जबकि मानव शरीर में पेशी संकोच

के समय उत्पन्न होने वाली शक्ति का लगभग ४० प्रतिशत कार्यरूप में परिणत होता है।

पेशी का रासायनिक संगठन

जल ७८% ; ठोस भाग २२%

ठोस भाग में होते हैं:—

(क) प्रोटीन्स १८ से २० प्रतिशत तक। जैसे—

१- अल्बुमिन्स (i) मायोजन या मायोसिनोजन

(ii) मायो-अल्बुमिन

ग्लोब्युलिन्स (i) मायोसिन या पैरामायोसिनोजन

(ii) ग्लोब्युलिन एक्स

स्ट्रोमा प्रोटीन Stroma protein

न्यूक्लियो प्रोटीन Nucleo protein

रञ्जक प्रोटीन-प्रोटीन रञ्जक Myochrome और Chromo protein

कोष रञ्जक Cytochrome

कोलेजन Collagen

२- स्नेह (Fats)— फोस्फोलीपाइड्स (Phospolipides के रूप में १—३%

ओलीन Olein

स्टीयरिन Stearin

पामीटिन Palmitin

३- कार्बो-हायड्रेट्स (Carbo-hydrates) जैसे—

द्राक्षा-शर्करा Glucose १ प्रतिशत

ग्लाइकोजन १ प्रतिशत

४ सत्व पदार्थ (Extractives) नाइट्रोजन रहित ०.५%

आइनोसिटोल (Inositol) ०.००१%

दुग्धाम्ल (Lactic acid) नाइट्रोजन युक्त—

क्रियेटिन, क्रियेटिनिन, क्रियेटिन फास्फारिक एसिड (फास्फेजन)

इनोसीन फास्फेट

एडिनिल पाइरोफास्फोरिक एसिड (Adenyl pyrophosphoric acid)

कार्नोसिन ०.२५%

ऐन्सरिन

प्यूरीन— (क) ग्वानीन (ख) हाइपोज़ैन्थीन (ग) एडिनीन (घ) ज़ैन्थीन

ग्लुटेथायोन और ग्लुटेमीन

५ निरिन्द्रिय लवण (Inorganic salts) १% जैसे—

पोटासियम सोडियम, कैल्सियम, मैग्नीशियम लोहे के क्लोराइड, सल्फेट और फोस्फेट

६ किण्व तत्व या पाचकरस (Enzymes) जैसे—

प्रोटीयोलीटिक	Proteolytic
एमीलोलीटिक	Amylolytic
ग्लाइकोलीटिक	Glycolytic
कोगुलेटिव	Coagulative
ओक्सीडेटिव	Oxidative

रक्त

रक्त एक द्रव (तरल) संयोजक तन्तु है। इसमें कोशाएं (कण) द्रव रूप में एवं बहुत अधिक परिमाण में रहते हैं और से ही अधिक परिमाण में रहने वाले अपने अन्तरकोशी पदार्थ के ा एक दूसरे से अलग बने रहते हुए भी मिल जुल कर एक धारा ो बनाते हैं। अन्य संयोजक तन्तुओं की भांति रक्त का विकास भी अभ्यन्तर से ही होता है। इसी तरल माध्यम के द्वारा शरीर के अन्य सब तन्तु साक्षात् या परोक्ष रूप में पोषण पाते हैं और इसी रक्त के द्वारा ही शरीर की सभी क्रियाओं में उत्पन्न होने वाले मल पदार्थों को भी उन उन तन्तुओं से बाहर निकाला जाता है।

रक्त के कार्य – (१) रक्त ही शरीर की पाचन नलिका से शोषित किये गये आहार और अन्य पदार्थों को शरीर के अन्य सब तन्तुओं तक पहुँचाता है और इस प्रकार उन तन्तुओं को उनकी वृद्धि और सन्धान के लिये आवश्यक तत्व प्राप्त कराता है। (२) शरीर के फुफ्फुसों में वायु से शोषित की गई आक्सीजन को तन्तुओं तक पहुँचा कर उन्हें यथेष्ट ताप-मान देता है। इस प्रकार आहार के तत्वों और आक्सीजन का उन तन्तुओं में जीवनोपयोगी ज्वलन होता है और उससे शक्ति उत्पन्न होती है।

(१) शरीर के अन्दर उत्पन्न होने वाले मल पदार्थ, जैसे कार्बन डायोक्साइड और दुग्धाम्ल (Lactic acid CH_3 CH (OH) COOH) और अन्य हानिकारक द्रव्यों, को रक्त ही मलोत्सर्ग के अंगों तक पहुँचाता है और तब वहाँ से उनका शरीर के बाहर त्याग किया जाता है।

(४) विभिन्न अन्तःस्रावों को रक्त ही शरीर के सम्पूर्ण तक पहुँचाता है जिससे शरीर के भिन्न भिन्न अंगों की क्रियाओं में सहकारिता हो सके।

(५) शरीर में उत्पन्न ताप का समान रूप से वितरण कर रक्त ही उसके सामूहिक ताप-क्रम को एक निश्चित सीमा पर बनाये रखता है।

(६) रक्त ही अपने श्वेतकणों के द्वारा दूषितकारक जीवाणुओं से शरीर की रक्षा करता रहता है।

रक्त की सूक्ष्म रचना:– रक्त में मुख्यतः द्रव या तरल भाग होता है जिसे रक्त-रस (Plasma) कहते हैं। इस द्रव में अनेक सूक्ष्म कण तैरते रहते हैं जो तीन प्रकार के होते हैं:—

(१) रक्त कण Erythro cytes या Redblood Corpuscles

(२) श्वेत कण Leucocytes या white blood corpuscles

(३) रक्त कणिका Thrombocytes या blood platelets

रक्त का लगभग ४५% भाग कणों से और लगभग ५५% भाग रक्त-रस से बनता है। रक्त का विशिष्ट गुरुत्व स्वभावतः १·०५५ से १·०६० तक होता है।

रक्त का तापक्रम– इसका औसत तापक्रम ३७·८ सेन्टीग्रेड या १००·४ फारेनहाइट है। मानव शरीर का रक्त जल से पाँच गुना गाढ़ा होता है।

परिमाण– यह रक्त सम्पूर्ण शरीर भार का लगभग ७·५ से लेकर १० प्रतिशत तक (औसत ८·८ प्रतिशत) अर्थात् १/१३ से १/१० तक होता है। इसका वितरण निम्नांकित रूप में होता है—

प्रायः ¼ भाग हृदय, फुफ्फुस और रक्त-वहु स्रोत में

प्रायः ¼ भाग यकृत् में

प्रायः ¼ भाग क्रियाशीलावस्था की पेशी में

प्रायः ¼ भाग अन्य अंगों में

रक्त रस Plasma

यह रक्त का तरल भाग है। इसका संघटन निम्नानुसार है:—

(१) जल ९०%

(२) प्रोटीन्स ७% जिनमें— सीरम अल्ब्युमिन ४·५%

ग्लोब्युलिन १·८%

फिब्रिन ०·४%

(३) सत्व पदार्थ Extractives—

(अ) नाइट्रोजन युक्त:— यूरिया, यूरिक अम्ल अमिनो अम्ल

क्रियेटिन क्रियेटिनिन, जैन्थीन,

हाइपो जैन्थीन।

एडिनिन ग्वैनिन।

नाइट्रोजन रहित:— फास्फोलिपिन कोलेस्टरोल

लेसिथिन, दुग्धाम्ल स्नेह, स्नेहाम्ल

द्राक्ष शर्करा

किण्वतत्व Enzymes:— शर्करा-जनक विश्लेषक, प्रोटीन

विश्लेषक ऑक्सीडेशन परिवर्तक स्नेह

विश्लेषक [illegible] विश्लेषक हिमोलायसीन।

(४) अन्य पदार्थ:— अल्प मात्रा रोग प्रतिरोधक पदार्थ, पूरक

(एलेक्सिन) ऐम्बोसेप्टर्स Ambo-ceptors

(२) जैसे:— कालसीयम, कार्बन डायोक्साइड, नाइट्रोजन।

रक्तकण Red-blood corpuscles

ये गोल होते हैं परन्तु दोनों वस्तुओं में नतोदर (पिचके हुए से) होते हैं और मुद्रा के समान दिख पड़ते हैं। इनमें केन्द्र नहीं होते। इनका व्यास लगभग [illegible] इन्च तथा मोटाई [illegible] इन्च होती है। पृथक होने पर ये कण गहरे पीले या हलके लाल रंग के दिखाई पड़ते हैं। जब यह मिले रहते हैं तो इनका रंग गहरा लाल होता है। इन कणों में परस्पर चिपकने की प्रवृत्ति होती है। जीवित अवस्था में इनमें लचीलापन होता है।

अम्ल-क्षारीय एवं पृथक मिश्रणों के प्रभाव से रक्त का विलयन हो जाता है।

रक्तकण की रचना:— इसकी रचना एक रंग रहित झिल्ली की तरह होती है जिसमें एक अर्ध-द्रव पदार्थ भरा रहता है। इसमें रक्त रञ्जक द्रव्य की प्रधानता होने से रक्तकण का रंग भी लाल प्रतीत होता है। प्रत्येक कण में लगभग [illegible] भाग जल रहता है। शेष ठोस भाग में ९०% रक्त रञ्जक द्रव्य होता है।

रक्तकण का रासायनिक संगठन—

जल	६५%
रक्त रञ्जक	३३%
अन्य ठोस पदार्थ	२% जैसे:—
(१) सेन्द्रिय Organic:—	(अ) प्रोटीन ०·६%
	(ब) लैसिथिन
	(स) कोलेस्टरीन

(२) निरिन्द्रिय (Inorganic) जैसे –

(य) पोटासियम, कैल्सियम और मैग्नीशियम के क्लोराइड

(ब) पोटासियम, कैल्सियम और मग्नीसियम के सल्फेट

(स) पोटासियम कैल्सियम और मैग्नीशियम के फास्फेट

कणों में पोटाशियम का एवं रक्तरस में सोडियम और कैल्शियम लवणों का प्राधिक्य रहता है।

संख्या – अनुमान लगाया गया है कि हमारे शरीर में प्रत्येक घनमिलीमीटर रक्त में ४५ से ५५ लाख तक रक्तकण के कीटाणु होते हैं और लगभग ७००० श्वेतकण होते हैं। स्त्रियों की प्रारम्भिक गर्भावस्था में रक्तवह प्रदेश के पुञ्ज सकेन्द्रक गर्भ-कीटाणुओं के विभक्त विभक्त होते हैं और वही विभक्त होते होते रक्तकणों में परिवर्तित हो जाते हैं।

प्रतिदिन रक्तकणों का नाश होता रहता है और इस क्षति की पूर्ति करने के लिये रक्तमज्जा में निरन्तर नये नये कण बनते रहते हैं। रक्तमज्जा में यों विकसित होने वाले रक्त कणों की संख्या ४० से ५० लाख तक होती है और इनमें लगभग १२ लाख रक्त कण प्रतिदिन बनते रहते हैं।

मनुष्य में लगभग चार या पांच सप्ताह के जीवन-चक्र के बाद रक्तकण विश्लेषित हो जाते हैं और रक्तरञ्जक द्रव्य भी विश्लेषित हो जाता है जिससे पित्तरञ्जक द्रव्य बनते हैं। इन पित्तरञ्जक द्रव्यों का त्याग मूत्र और पुरीष द्वारा निरन्तर होता रहता है।

रक्तरञ्जक द्रव्य (Haemoglobin)– इसके कारण र का रंग लाल रहता है। यह एक संयुक्त प्रोटीन है जो ९६% ग्लो

(Globin) जिसमें प्रोटीन का भाग भी रहता है तथा ४% रक्त-रंजक (Haemochromogen) $C_{34} H_{32} O_4 N_4 Fe$) जिसमें ०.३३५ प्रतिशत लोहा रहता है, के मिलने से बना है।

१०० ग्राम रक्त में १४ या १५ ग्राम रक्तरञ्जक द्रव्य रहता है। आक्सीजन को ढोने की रक्त की शक्ति पूर्ण रूप से रक्ताणुओं में विद्यमान रक्तरञ्जक के परिमाण पर निर्भर होती है। रक्त-रंजक का यह एक विशिष्ट गुण है कि यह आक्सीजन के साथ आसानी से संयुक्त हो जाता है और उतनी ही आसानी से उसको छोड़ भी देता है। उसका यह गुण ही जीवन के लिये महत्वपूर्ण है।

श्वेतकण (White blood corpuscles)— यह कोई केन्द्रक युक्त कोषाणु होते हैं। कुछ लाल कणों से छोटे होते हैं किन्तु अधिकतर बड़े होते हैं। इनमें गति करने की शक्ति होती है। प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में इनकी औसत संख्या प्रत्येक क्यूबिक मिलीमीटर रक्त में ७००० से ९००० तक होती है। इनमें जीवाणु भक्षण (Phagocytosis) का भी गुण होता है। वृद्धावस्था में और उपवास करने के बाद इनकी संख्या घट जाती है।

श्वेतकणों का कार्य— शरीर की रक्षा के लिये यह कण कुशल सैनिकों की तरह होते हैं। जब शरीर पर कोई बाहरी आक्रमण होता है तब यह कण आक्रमण के उस स्थान पर एकत्रित होकर उसके विरुद्ध संघर्ष करते हैं। यदि श्वेतकण उन आक्रमणकारी जीवाणुओं से बलवान हुए तो उन्हें अपने भीतर लेकर पचा जाते हैं। इसे जीवाणु भक्षण (Phagocytosis) की क्रिया कहते हैं। रोगोत्पादक जीवाणुओं से शरीर की रक्षा के लिये इनका अस्तित्व अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इनकी संख्या

कम होने पर शरीर पर प्रत्येक प्रकार के कीटाणुओं का आक्रमण होने लगता है और शरीर रुग्ण होकर अन्त में मृत्यु हो जाती है।
हृदय की धड़कन का कारण–

प्रत्येक प्राणी के और इस कारण मनुष्य के शरीर में उसका हृदय निरन्तर धड़कता रहता है। हृदय की यह धड़कन ही जीवन के अस्तित्व की द्योतक है। इस धड़कन का कारण भी रक्त ही है। रक्त के खनिज लवण हृदय की नियमित गति के लिये आवश्यक हैं- विशेषकर सोडियम पोटासियम तथा कैल्सियम के विलेयित धातु। इन तत्वों की एक निश्चित अनुपात में उपस्थिति के कारण ही हृदय स्पन्दन करता है। आजकल यह समझा जाता है कि पोटाशियम ही प्रधानतः शिरालिन्द ग्रन्थि को उत्तेजित करता है और यह ग्रन्थि ही हृदय की धड़कन का उद्गम स्थान है। हृदय में ऑटोमेटी नोजन (Automatinogen) नामक एक सेन्द्रिय (Organic) पदार्थ रहता है जो पोटाशियम के द्वारा (Automatin) में परिवर्तित होता है जिससे हृदय में उत्तेजना होती है।

हृदय पेशियों की रचना ऐसी है कि वे शाखाओं द्वारा परस्पर सम्बन्ध हैं। अतः हृदय के एक भाग में उत्पन्न उत्तेजना इन्हीं पेशियों के द्वारा दूसरे भाग में पहुँच जाती है। अन्य पेशियों के समान हृदय की पेशियों में भी संकोच के समय क्रिया-जन्य विद्युत् धारा की उत्पत्ति होती है।

आहार

शरीर के द्वारा रात-दिन किये जाने वाले कार्यों में और अन्य

और कैंसर जैसे अनेक दुःसाध्य रोगों के जनक हैं) पर डालते हैं। क्योंकि, ऐसा मालूम होता है मानो यह 'विरस' परमाणु-केन्द्रीय (Nuclear) नियमों में भी हस्तक्षेप कर सकते हैं।

वास्तव में 'विरस' ऐसे सूक्ष्म जीवाणु हैं जो इस 'डी एन ए' के ही मानो एक बंधे हुए पुञ्ज हैं। जब यह किसी कोषाणु में आ घुसते हैं तब यह उसके सम्पूर्ण बनाव या गठन पर अपना हमला बोल देते हैं। स्वयं कोषाणु के आवश्यक जैविक घटकों के ही मानो यह कुछ गलत क्रमों में बने हुए टुकड़े हैं। कोषाणु में घुस आकर यह उस कोषाणु को गलत ढङ्ग से चलाते हैं और इस प्रकार उसे रुग्ण बना देते हैं। 'कैंसर' (Cancer) भी एक ऐसी ही बीमारी है जो उन कोषाणुओं की वृद्धि और बहु-भवन (Multiplication) पर नियन्त्रण रखने वाली किसी प्रक्रिया के ही निकटतम सम्बन्ध में बंधी हुई है। "डी एन ए" इस प्रक्रिया के केन्द्र में होता है और 'कैंसर' रोग की उत्पादक प्रक्रिया में अनिवार्य आन्तरिक रूप में रहता है। यहाँ भी कोषाणुओं के केन्द्रों से आनेवाले संकेत कुछ गलत बनने लगते हैं जिससे कोषाणुओं की अनियन्त्रित वृद्धि और विभाजन होने लगता है।

जब एक स्वस्थ कोषाणु विभाजित होता है– और सभी जीवित कोषाणु एक बंधे हुए नियमित कालान्तर पर ऐसा अवश्य करेंगे ही:– तब उन कोषाणुओं की प्राकृतिक वृद्धि और विभाजन के उचित नियमों का सेट (Set) उस विभाजन के बाद उत्पन्न होने वाले नये कोषाणुओं को विरासत के रूप में पहुँचा दिया जाता है। यदि ऐसा न हो तो शरीर में जीवात्मक अराजकता ही मच जाय। कैम्ब्रिज (इङ्गलैण्ड) की केवेंडिश रसायनशाला में एक साथ संयुक्त शोधकार्य

करते हुए जे डी वाट्सन (J D Watson) और एफ एच सी क्रिक (F H. C. Crick) नामक दो वैज्ञानिकों ने सन् १९५३ में यह सिद्ध कर दिखाया कि कोशाणुओं का यह विभाजन किस प्रकार होता है।

उन्होंने सुझाया कि सर्पिलाकार "डीएनए" का गुंथाव, विभाजन होने के पहिले कुछ ढीला होकर खुल पड़ता है। "डीएनए" के दोनों गुंथावों से एक एक तन्तु निकल कर प्रत्येक नये बनने वाले कोशाणु के केन्द्र में जा पहुंचते हैं। प्रत्येक तन्तु के चारों ओर तब एक दूसरा तन्तु बनाया जाता है। जिन चार रासायनिकों के वर्ग का हम ऊपर उल्लेख कर आये हैं उनके पारस्परिक सम्बन्धों के विधायक नियमों के सख्त नियन्त्रण के कारण नये कोशाणुओं की यह दुहरी सर्पिलाकार शृंखलाएं उन उत्पादक कोशाणुओं की शृंखलाओं के बिल्कुल अनुरूप ही होती हैं।

अगला प्रश्न यह होता है कि कोशाणु के भीतर जो कुछ भी हलचल होती रहती है उसको 'डीएनए' किस प्रकार अपने वश में रखता है? इस प्रश्न का उत्तर प्रोटीनों के गठन पर निर्भर है।

यदि हम "डीएनए' को कोशाणु का मस्तिष्क मानें तो प्रोटीनों को उसका मांस और रक्त मानना होगा।

जैसा कि हम प्रोटीनों का विवरण देते हुए यहां लिख आये हैं कुल मिलकर २० रासायनिकों अथवा आमिनो-एसिडों से ही प्रोटीन बने हुए हैं। प्रोटीन का एक अणु इन आमिनो-एसिडों की एक या अधिक शृंखलाओं से जो एक दूसरी में जुड़ी रहती हैं, बना हुआ है। इन आमिनो-एसिडों का क्रम (Sequence) ही उस

और चेचक जैसे अनेक दुःसाध्य रोगों के जनक हैं) पर डालते हैं। क्योंकि ऐसा मालूम होता है मानो यह 'विरस' परमाणु-केन्द्रीय (Nuclear) नियमों में भी हस्तक्षेप कर सकते हैं।

वास्तव में 'विरस' ऐसे सूक्ष्म जीवाणु हैं जो इस 'डी एन ए' के ही मानो एक बंधे हुए गुच्छ हैं। जब यह किसी कोषाणु में घा घुसते हैं तब वह उसके सम्पूर्ण बनाव या गठन पर घातक हमला बोल देते हैं। स्वयं कोषाणु के आवश्यक जैविक घटकों के ही मानो वह कुछ गलत वर्गों में लगे हुए टुकड़े हैं। कोषाणु में घुस जाकर वह उस कोषाणु को गलत ढङ्ग से चलाते हैं और इस प्रकार उसे रुग्ण बना देते हैं। "कैंसर" (Cancer) भी एक ऐसी ही बीमारी है जो उन कोषाणुओं की वृद्धि और बहु-भजन (Multiplica tion) पर नियन्त्रण रखने वाली किसी प्रक्रिया के ही निकटतम सम्बन्ध में बंधी हुई है। "डी एन ए" इस प्रक्रिया के केन्द्र में होता है और "कैंसर" रोग की उत्पादक प्रक्रिया में अनिवार्य आन्तरिक रूप में रहता है। यहाँ भी कोषाणुओं के केन्द्रों से आनेवाले संकेत कुछ गलत बनने लगते हैं जिससे कोषाणुओं की अनियन्त्रित वृद्धि और विभाजन होने लगता है।

जब एक स्वस्थ कोषाणु विभाजित होता है— और सभी जीवित कोषाणु एक बंध हुए नियमित कालान्तर पर ऐसा अवश्य करते ही— तब उन कोषाणुओं की प्राकृतिक वृद्धि और विभाजन के उचित नियमों का सत्र (Set) उस विभाजन के बाद उत्पन्न होने वाले नये कोषाणुओं को विरासत के रूप में पहुँचा दिया जाता है। यदि ऐसा न हो तो शरीर में जीवात्मक अराजकता ही मच जाय। कैम्ब्रिज (इङ्गलैण्ड) की कैवेण्डिश रसायनशाला में एक साथ संयुक्त शोधकार्य

करते हुए जे डी वाट्सन (J D Watson) और एफ. एच. सी क्रिक (F H. C. Crick) नामक दो वैज्ञानिकों ने सन् १९५३ में यह सिद्ध कर दिखाया कि कोषाणुओं का यह विभाजन किस प्रकार होता है।

उन्होंने सुझाया कि सर्पिलाकार "डीएनए" का गुंथाव, विभाजन होने के पहिले कुछ ढीला होकर खुल पड़ता है। "डीएनए" के दोनों गुंथावों से एक एक तन्तु निकल कर प्रत्येक नये बनने वाले कोषाणु के केन्द्र में जा पहुंचते हैं। प्रत्येक तन्तु के चारों ओर तब एक दूसरा तन्तु बनाया जाता है। जिन चार रासायनिकों के वर्ग का हम ऊपर उल्लेख कर आये हैं उनके पारस्परिक सम्बन्धों के विधायक नियमों के सख्त नियन्त्रण के कारण नये कोषाणुओं की यह दुहरी सर्पिलाकार शृ खलाएं उन उत्पादक कोषाणुओं की शृ खलाओं के बिल्कुल अनुरूप ही होती हैं।

अगला प्रश्न यह होता है कि कोषाणु के भीतर जो कुछ भी हलचल होती रहती है उसको "डीएनए" किस प्रकार अपने वश में रखता है? इस प्रश्न का उत्तर प्रोटीनों के गठन पर निर्भर है।

यदि हम "डीएनए" को कोषाणु का मस्तिष्क मानें तो प्रोटीनों को उसका मांस और रक्त मानना होगा।

जैसा कि हम प्रोटीनों का विवरण देते हुए वहाँ लिख आये हैं कुल मिलाकर २० रासायनिकों अथवा आमिनो-एसिडों से ही प्रोटीन बने हुए हैं। प्रोटीन का एक अणु इन आमिनो-एसिडों की एक या अधिक शृ खलाओं से जो एक दूसरी में जुड़ी रहती हैं, बना हुआ है। इन आमिनो-एसिडों का क्रम (Sequence) ही उस

प्रोटीन की प्रकृति का निर्णायक होता है कुछ प्रोटीन भृ खलाओं में हजारों कड़ियें होती हैं और कुछ में केवल सैकड़ों ही। परन्तु उन सब की बनावट में आधारभूत रासायनिक बिल्कुल नहीं होते हैं उनमें कोई अन्तर नहीं होता।

अबतक केवल दो छोटे प्रोटीन अणुओं में ही उनकी बनावट की वास्तविक क्रम-भृ खला का पता लग सका है। सन् १९५५ ई० में एफ़. सैंगर (F Sanger) और उनके सहकर्मियों ने कैम्ब्रिज रसायनशाला की "मोलीक्यूलर बायलोजी यूनिट" में ९ वर्षों के निरन्तर शोध-प्रयासों के बाद इन्सुलीन के सम्पूर्ण रचनात्मक क्रमों का पता लगाया था। सन् १९६० के जून महीने के अंतिम सप्ताह में ट्यूबिन्जन (Tubingen) (जर्मनी) में जर्मन वैज्ञानिकों के एक वर्ग ने तमाखु के "मोजेक विरस" (Mosaic virus) के एक दूसरे प्रोटीन आवरण के विस्तृत क्रमिक विश्लेषण की जानकारी पा लेने की घोषणा की थी।

परन्तु इन प्रोटीनों का रचना-क्रम केवल उनकी आधी कहानी ही कह पाता है। रचना-क्रम की जानकारी हमें ऐसा कोई सुराग नहीं देती जिससे हम यह जान सकें कि प्रोटीन अपना काम (प्राणियों के शरीरों की बनावट और वृद्धि में) कैसे करता है। ठीक यहीं आकर हमें यह जानने की जरूरत होती है कि इन अणुओं का ढांचा कैसे खड़ा किया गया है। इस बात की झलक तो हमें मिल ही चुकी है कि प्राणी-जीवन की इमारत की नींव में आमिनो-एसिडों की लम्बी भृ खलाएं जटिल त्रि-आयामिक (Three-dimensional) अवस्था में अपने दूसरे बनाकर लगी हुई हैं।

(Myoglobin) "मायोग्लोबीन" भी एक प्रोटीन है जिसे प्रत्येक प्राणी मनुष्य और पशु अपनी रगों में आक्सीजन के संचय के काम में लेते हैं। आक्सीजन के एक परमाणु को कुछ थोड़े समय तक अपने पास बाँध रखने का काम यह मायोग्लोबीन करता है। इस प्रोटीन के अणुओं में लोहा रहता है जिसे हेम (Haem) वर्ग कहते हैं। यह अणु भारी संख्या में एक जगह इकट्ठे रहते हैं और इस प्रकार सामूहिक रूप में आक्सीजन परमाणु को कुछ देर अपने पास रोके रखते हैं। मायोग्लोबीन के अणुओं का एक बड़ा भाग उक्त 'हेम' वर्ग को अपनी शुद्ध स्थिति में बनाये रखने के काम में आता है। अभीतक यह समझ में नहीं आया है कि इतना सरल काम करने के लिये मायोग्लोबीन के इतने बड़े अणु की आवश्यकता क्यों पड़ती है ?

हेमोग्लोबीन, जिसकी बाबत हम ऊपर लिख चुके हैं, मायोग्लोबीन अणु से चार गुना बड़ा होता है। मायोग्लोबीन रगों में जो काम करता है ठीक वही काम हेमोग्लोबीन रक्त में करता रहता है।

इस बात का पता तो लग चुका है कि हेमोग्लोबीन का अणु वास्तव में चार छोटी इकाइयों से बना हुआ है। प्रत्येक इकाई अपनी बनावट में बिल्कुल मायोग्लोबीन की तरह ही होती है। यह बात देखते हुए इस अनुमान की पुष्टि होती है कि प्रोटीनों के अणुओं की स्थिति-व्यवस्था (Spatial arrangement) ही उनके अलग अलग कामों का निश्चय करती है।

प्रोटीनों और जीवाणु केन्द्रों में क्या पारस्परिक सम्बन्ध है:—

चौथा परिच्छेद

तत्त्व, अणु और परमाणु

अब हम उस मूल स्रोत और नंगी आँखों से न दिख पड़ने वाले आधार तक आ पहुँचे हैं जहाँ खड़े होकर और जिसके बल पर हम यह बतला सकेंगे कि प्रत्येक मनुष्य उसके शरीर को बनाने वाले अणुओं-परमाणु-कणों के बल पर, अमर है।

हमारे शरीर के निर्माण में लगे हुए कार्बन हाइड्रोजन, आक्सीजन नाइट्रोजन, गन्धक, पोटासियम कैल्सियम और सोडियम–सब तत्त्व हैं। इसी प्रकार लोहा, तांबा चाँदी सोना पारा इत्यादि सब तत्त्व कहलाते हैं।

कुछ सौ वर्ष पहिले तक वैज्ञानिक यही मानते चले आ रहे थे कि पृथ्वी के वायु-मण्डल में और उसकी पपड़ी के भीतर पाई जाने वाली गैसें और खनिज वस्तुएँ अपने इन्हीं मूलरूपों में विश्व-प्रकृति द्वारा बनाई हुई हैं। वह अविभाज्य हैं। उनके और कोई घटक (Components) नहीं होते। प्रकृति ने उन्हें आरम्भ से इन रूपों में ही गढ़ा है। इसलिये उनको 'मूलतत्त्व' कहा गया। परन्तु आज के वैज्ञानिकों ने कुछ आश्चर्यजनक उपकरण बनाकर उनके द्वारा इन तत्त्वों को तोड़-फोड़ कर इनको बनाने वाले परमाणुओं कणों और उन से भी आगे बढ़कर क्वान्टम फील्ड्स (Quan-

tum fields) को इनकी अन्तिम और प्रारम्भिक इकाइयाँ मानी जाती हैं, तत्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया है फिर भी इनको "मूलतत्व" या तत्व (Elements) ही कहा जाता है।

हाइड्रोजन गैस से लेकर यूरेनियम तक इन तत्वों की कुल संख्या ९२ है। यद्यपि आज विज्ञान जगत् ने यूरेनियम से और भी आगे बढ़कर १० तत्वों का रसायन-शालाओं में कृत्रिम निर्माण कर लिया है फिर भी इन दसों तत्वों का प्रकृति में अस्तित्व नहीं पाया जाता।

समय बीतने के साथ वैज्ञानिक यन्त्रों और उपकरणों की शक्ति-सामर्थ्य बढ़ी और वैज्ञानिकों ने उनकी मदद लेकर तत्वों को उनके सूक्ष्मतम अंशों या कणों तक तोड़ डाला। तत्वों के इन सूक्ष्मतम कणों को उनके परमाणु (Atoms) कहा गया। जिन ९२ तत्वों का हम ऊपर उल्लेख कर आये हैं उनके परमाणुओं के अनेक तरह के मेल से चारों ओर दिखाई पड़ने वाली लाखों और करोड़ों चीजें बन जाती हैं। इस बात को समझाने के लिये हम हिन्दी वर्णमाला का उदाहरण दे सकते हैं। हिन्दी वर्णमाला में १२ स्वर और ३६ व्यञ्जन-कुल ४८ वर्ण हैं; परन्तु इन वर्णों को भिन्न भिन्न प्रकार से जोड़कर हम हजारों लाखों शब्दों को बना सकते हैं। इसी प्रकार इन भिन्न भिन्न ९२ तत्वों के परमाणुओं को अनेक तरह से मिला कर संसार में दिख पड़ने वाले अनेक पदार्थ बनाये जा सकते हैं।

इस बात को हम एक दूसरे उदाहरण से भी समझा सकते हैं। मान लीजिये आपके पास ५ या ६ रंगों के डब्बे हैं। रंगों की संख्या

बड़ा कर दिया जाय तो आप देखेंगे कि वे अब आँख से दिखने लगे हैं, क्योंकि अब प्रत्येक परमाणु का व्यास १० इन्च हो गया है।

प्रथम तो हमने यह देखा कि परमाणु का अधिकांश खाली स्थान होता है। फिर, यदि हम परमाणु के बसते हुए भागों की गति हल्की कर सकें तो देखेंगे कि इसमें दो कणों (Particles) के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इनमें से एक कण तो परमाणु के केन्द्र में है; दूसरा कण बड़ी तीव्र गति से इस केन्द्रीय कण के चारों ओर घूम रहा है– उसी तरह जैसे किसी डोरी के सिरे पर बँधी हुई गेंद घुमाने वाले के सिर के चारों ओर घूमती है। परमाणु के केन्द्र में जो अकेला कण बैठा हुआ है उसे प्रोटान (Proton) कहते हैं। जो छोटा कण उस प्रोटान के चारों ओर अत्यधिक वेग से घूम रहा है उसे एलेक्ट्रान (Electron) कहते हैं। इस प्रकार हाइड्रोजन परमाणु हुआ; केन्द्र में एक प्रोटान और उसके चारों ओर घूमता हुआ एक एलेक्ट्रान।

यह दोनों ही कण – प्रोटान और एलेक्ट्रान-बिजली के दो रूप हैं। प्रोटान पर धनात्मक बिजली (Positive electricity) का आवेश (Charge) होता है और इलेक्ट्रान पर ऋणात्मक बिजली (Negative electricity) का आवेश होता है।

यह बिजली वास्तव में क्या चीज है इसकी चर्चा हम आगे चलकर करेंगे।

इन दोनों कुण्डलों, प्रोटान और इलेक्ट्रान के मध्य एक प्रबल आकर्षण होता है — यह वही आकर्षण है जो ऋणात्मक और धनात्मक विद्युत् आवेशों के बीच सदा मौजूद रहता है। तब

तो यह है कि इलैक्ट्रान और प्रोटान दोनों ही विद्युत के दो रूप हैं। आकर्षण ही इलैक्ट्रान को प्रोटान की ओर भीतर को खींचता रहता है। उधर इलैक्ट्रान का स्वभाव या उसकी प्रवृत्ति हमेशा ऋजुरेखा (सरल रेखा) में ही गति करते रहने की होती है। उसका यह स्वभाव ही उसे प्रोटान के अपनी ओर खींचने के बल को प्रतिसंतुलित किये रहता है। दूसरे शब्दों में, यदि आकर्षण न हो तो इलैक्ट्रान ऋजुरेखा में चलता हुआ प्रोटान से दूर उड़ जायगा, परन्तु प्रोटान का उसको अपनी ओर आकर्षित करने का स्वभाव उसे रोके रखता है। इस प्रकार इलैक्ट्रान हमेशा प्रोटान के चारों ओर चक्कर काटता रहता है। यह बहुत कुछ उसी तरह के बलों का संयोजन या मेल होता है जो डोरी के सिरे पर बंधी गेंद घुमाने पर उत्पन्न होते हैं। यदि डोरी टूट जाय तो गेंद उसे घुमाने वाले के हाथ से छिटक कर दूर जा पड़ेगी पर यदि वह नहीं टूटती तो डोरी उसके हाथ और गेंद के बीच आकर्षण-बल के रूप में काम करती रहेगी। डोरी तब गेंद को उसके सिर के चारों ओर एक गोल चक्कर में चलाती रहेगी।

दो प्रोटानों में आपस में विकर्षण होगा और दो इलैक्ट्रानों में भी अर्थात् एक दूसरे के पास लाये जाने पर वह एक झटके के साथ दूर दूर हो जावेंगे यही बात चुम्बकों (Magnets) पर भी लागू होती है। जैसा कि हम आगे चलकर बतलावेंगे विद्युत् व चुम्बकत्व का एक दूसरे के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है और वे एक दूसरे से अलग नहीं रह सकते।

एक प्रोटान लगभग १८३७ इलैक्ट्रान कणों के बराबर भारी

के निर्माण में कार्बोहाइड्रेटों और प्रोटीनों का ही एक मात्र हाथ रहता है और यह दोनों ही रासायनिक वर्ग कार्बन के ही ठोस आधार पर बने खड़े रहते हैं।

तत्वों की अपनी बिरादरी में कार्बन ही सबसे अधिक मिलनसार तत्व है। अपनी आन्तरिक बनावट और क्रमिक तालिका (Periodic table) में अपनी स्थिति के कारण कार्बन के परमाणु न केवल अपने सगे भाई अन्य कार्बन परमाणुओं से अपितु आक्सीजन और हाइड्रोजन जैसे तत्वों के परमाणुओं से भी बड़ी खुशी के साथ संयोग कर लेते हैं। इसे संयोग-शक्ति (Power of valency) कहते हैं। उसकी इसी शक्ति पर ही संसार की करोड़ों और अरबों भिन्न भिन्न वस्तुएं बन सकी हैं।

कार्बन के बाद क्रम तालिका में सातवां तत्व है नाइट्रोजन जिसमें एक परमाणु के केन्द्र में ७ प्रोटान और ७ ही न्यूट्रान रहते हैं और उसके चारों ओर ७ इलेक्ट्रान घूमते रहते हैं। इसका परमाणु-भार १४ है। उसके बाद आठवां तत्व आक्सीजन है जिसके परमाणु-केन्द्र में ८ प्रोटान और ८ न्यूट्रान होते हैं और ८ ही इलेक्ट्रान चारों ओर घूमते हैं। इसका परमाणु भार १६ है। इस प्रकार तत्वों का यह क्रम अपने केन्द्रों में अपने से पहिले के तत्व के परमाणु-केन्द्र के प्रोटानों से एक एक अधिक प्रोटान बढ़ाता जाता है और अन्त में हम संख्या ९२ के तत्व यूरेनियम तक आ पहुंचते हैं जिसके एक परमाणु के केन्द्र में ९२ प्रोटान होते हैं और ९२ ही इलेक्ट्रान उसके चारों ओर अनेक 'शैलों' में या कक्षाओं पर चक्कर काटते रहते हैं।

हमारे शरीरों के लिये नाइट्रोजन (तत्व संख्या ७) और आक्सीजन (तत्व संख्या ८) यह दोनों गैसें बहुत अधिक आवश्यक

है। हमारे चारों ओर की हवा में ४/५ नाइट्रोजन और १/५ आक्सीजन का मिश्रण है। जब हम सांस लेते हैं तो हवा के इसी मिश्रण को भीतर खींचते हैं। हमारे शरीर का खून इस मिश्रण में से आक्सीजन ग्रहण करलेता है। आक्सीजन की हमारे शरीर के विभिन्न पदार्थों पर प्रतिक्रिया होती है और इस प्रकार हमारा जीना सम्भव होता है। नाइट्रोजन को हम अपने सांस के साथ बाहर निकाल देते हैं।

परमाणु सामान्यतः एक दूसरे से समूहों के रूप में सम्बद्ध रहते हैं। इन समूहों को अणु (Molecules) कहते हैं। कुछ अणु बहुत छोटे होते हैं। उदाहरण के लिये वायु अधिकांशतः ऐसे अणुओं की बनी होती है जिनमें दो दो परमाणु होते हैं। बड़े अणु भी होते हैं। हमारे शरीर में कुछ अणु तो हजारों परमाणुओं के बने होते हैं।

अणु सदा गति करते रहते हैं। हमारे चारों ओर की हवा में अणु लगभग १० मील प्रति घण्टे की गति से चलते फिरते रहते हैं। यहाँ तक कि ठोस पदार्थों में जो कि शान्त और गतिहीन दिखाई देते हैं अणु बड़ी तेजी से आगे पीछे घूमते रहते हैं। तापमान जितना अधिक होता है उतनी ही अधिक उनकी गति होती है।

स्वभावतः ही इस प्रकार गति करते हुए अणु एक दूसरे से अक्सर ही टकराते रहते हैं। इस प्रकार की टक्करें एक मिनट में लाखों करोड़ों हो सकती हैं। टकराने वाले अणु अक्सर पीछे हट जाते हैं और उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कभी कभी उनमें कुछ परिवर्तन भी होता है। टकराने वाले अणुओं में कभी कभी उनके एक या दो परमाणु पृथक हो सकते हैं या भिन्न अणु या भिन्न अणुओं से बह

टकराते हैं उनसे कुछ परमाणु ले या उनको दे सकते हैं। टकराने वाले अणु आपस में चिपक भी सकते हैं और नये तथा बड़े अणु बना सकते हैं।

आयन्स (Ions) – अपनी आपसी टक्करों में किसी अणु का एक परमाणु अपने इलेक्ट्रान खो सकता है। उदाहरण के लिये हम परमाणु संख्या ११ को लेते हैं जिसमें सामान्यतः ११ ही इलेक्ट्रान होते हैं। यह तत्व सोडियम (Sodium) है। यह एक सक्रिय धातु है और इस कारण इसके परमाणु दूसरे तत्वों के परमाणुओं से संयुक्त होकर हमारी दुनिया की अनेक वस्तुएं बनाते हैं, जैसे क्लोरीन गैस के एक परमाणु के साथ संयुक्त होकर इस सोडियम धातु का एक परमाणु सोडियम क्लोराइड का एक अणु बन जाता है। यह सोडियम क्लोराइड ही हमारे प्रतिदिन खाने का नमक है।

जब एक सोडियम परमाणु किसी दूसरे प्रकार के परमाणु से टकराता है तब सोडियम का यह परमाणु कभी कभी अपना एक इलेक्ट्रान खो देता है। जैसा कि हम अभी बतला चुके हैं इस परमाणु की कक्षाओं पर ११ इलेक्ट्रान होते हैं जो उसके केन्द्र में स्थित ११ प्रोटानों द्वारा संतुलित रहते हुए इस परमाणु को निष्क्रिय, और विद्युत् आवेश (Electric charge) से हीन बनाये रखते हैं। इस प्रक्रिया में एक इलेक्ट्रान के खो दिये जाने पर इसमें अब केवल १० ही ऋणीय इलेक्ट्रान रह जाते हैं। अब यह परमाणु तटस्थ नहीं रह सकता; क्योंकि इसके केन्द्र में जहाँ धन विद्युत् के ११ प्रोटान हैं वहाँ उसकी कक्षाओं पर अब केवल ऋण-विद्युत् के १० ही इलेक्ट्रान रह गये हैं। इस भाँति बचे १ इलेक्ट्रानों का कुल विद्युत् आवेश

(Electric charge)– १० हो जाता है जब कि परमाणु के केन्द्र में ११ प्रोटानों का कुल आवेश+११ होता है। इस प्रकार सब मिलाकर उस परमाणु का कुल आवेश+१ हो जाता है। अतः यह धन आवेश (Positive charge) का परमाणु बन जाता है।

एक उदाहरण और लेते हैं। तत्व १७ क्लोरीन है जो एक हरी और जहरीली सक्रिय गैस है। इस गैस के परमाणु हाइड्रोजन, आक्सीजन व नाइट्रोजन के परमाणुओं की तरह जोड़े बनाते हैं। जब एक क्लोरीन अणु दूसरे किसी तत्व के अणु या परमाणु से टकराता है तब उस क्लोरीन अणु का एक परमाणु कभी कभी उस दूसरे तत्व के परमाणु से एक अधिक इलेक्ट्रान ग्रहण कर लेता है और उसे वैसे ही अपने रखता है। क्लोरीन परमाणु में अब एक इलेक्ट्रान के बढ़ जाने पर १८ इलेक्ट्रान हो जाते हैं जिनका कुल आवेश–१८ हो जाता है। परन्तु केन्द्र में तो तब भी वह १७ ही प्रोटान होते हैं जिनका कुल आवेश+१७ होता है। इस प्रकार उस क्लोरीन परमाणु का कुल आवेश–१ हो जाता है।

यदि परिस्थितियाँ ठीक हों तो सभी सक्रिय तत्वों के परमाणु एक या अधिक इलेक्ट्रान खोते या ग्रहण करते रहते हैं। फलस्वरूप कभी कभी अणुओं में इलेक्ट्रानों की संख्या सामान्य से कम या अधिक हो सकती है। इस प्रकार के परमाणु या अणु (कभी कभी परमाणु समूह या अणु-समूह भी) उदस्थ नहीं होते। उन पर या तो धन आवेश (Positive charge) होता है यदि इलेक्ट्रान निकल जावें या उन पर ऋण आवेश (Negative charge) होता है यदि उनमें एक अधिक इलेक्ट्रान आ जावे।

ये आवेश युक्त परमाणु या अणु किसी विद्युत्-धारा (Electric current) के साथ इलेक्ट्रानों की तरह ही अनुकूल परिस्थितियाँ हों तो आ सकते हैं। ऋण-विद्युत के परमाणु या अणु इलेक्ट्रानों की ही दिशा में जाते हैं और धन-विद्युत के परमाणु या अणु उनसे विपरीत दिशा में जाते हैं।

क्योंकि ये आवेश-युक्त परमाणु या अणु विद्युत्-धारा की उपस्थिति में ही क्रियाशील होते हैं इसलिये इन्हें "आयन" (Ions) कहते हैं। "आयन" शब्द ग्रीक भाषा का है जिसका अर्थ "जाना" होता है। अपने आवेशों के अनुसार यह "ऋण आयन" या "धन आयन" कहलाते हैं।

रेडियो सक्रियता या विकिरण(Radio-activity)— किसी भी एक परमाणु के केन्द्र में जब दो या दो से अधिक प्रोटान होते हैं तो उन्हें केन्द्र में एक साथ बाँध रखने के लिये न्यूट्रन (Neutrons) होने अत्यावश्यक है। प्रोटान धन-विद्युत (Positive electricity) के ही कण होते हैं और क्योंकि बिल्कुल एक जैसे विद्युत् आवेश के कण एक दूसरे से दूर भागते हैं इसलिये उन्हें जोर जबर्दस्ती एक साथ बाँधे रखने को विद्युत् आवेश से बिल्कुल हीन न्यूट्रानों का होना जरूरी होता है। जब केन्द्रीय प्रोटानों की संख्या थोड़ी होती है तब न्यूट्रानों की उतनी ही संख्या उस केन्द्र को स्थायी बनाये रखने में पर्याप्त होती है। हीलियम-४ (तत्व संख्या २) के केन्द्र में २ प्रोटान और २ न्यूट्रान होते हैं। कार्बन-१२ (तत्व संख्या ६) के केन्द्र में ६ प्रोटान और ६ न्यूट्रान होते हैं। आक्सीजन-१६ (तत्व संख्या ८) के केन्द्र में ८ प्रोटान और ८ न्यूट्रान एवं नीयोन

(Neon)- २० (तत्व संख्या १०) के केन्द्र में १० प्रोटान और १० न्यूट्रान होते हैं।

लेकिन यह स्थिति देर तक नहीं रहती। जब किसी परमाणु केन्द्र में २० से अधिक प्रोटान होते हैं तब न्यूट्रानों की उतनी ही संख्या उस केन्द्र को स्थायी बनाये रखने के लिये पर्याप्त नहीं होती। कुछ अधिक न्यूट्रानों की जरूरत होती है। उदाहरण के लिये लोहे के परमाणु-केन्द्र में २६ प्रोटान होते हैं लेकिन लोहे का स्थायी केन्द्र बनाने के लिये २६ ही न्यूट्रान पर्याप्त नहीं होते। इसके लिये कम से कम २८ न्यूट्रान चाहिये अर्थात् २ न्यूट्रान अधिक। २१ प्रोटान के केन्द्र वाले तत्व के परमाणु को स्थायी बनाने के लिये कम से कम १४ न्यूट्रान चाहिये। टिन के परमाणु के लिये जिसके केन्द्र में १० प्रोटान होते हैं, १२ न्यूट्रान चाहिये।

आगे बढ़ने पर और भी अधिक न्यूट्रानों की जरूरत हो जाती है। सबसे भारी स्थायी सीसा धातु के एक परमाणु के केन्द्र में ८२ प्रोटान होते हैं। इस भारी संख्या को स्थायी रखने के लिये १२२, १२४, १२५ या १२६ न्यूट्रान होते हैं। न्यूट्रानों की इन चारों संख्याओं के कारण भिन्न भिन्न चार प्रकार के अणु भार वाले सीसा धातु के ४ सहोदर (Isotopes) बनते हैं।

किसी परमाणु-केन्द्र में जब प्रोटानों की संख्या ८२ से अधिक होती है तब सारा पतन ही शुरू हो जाता है। ८२ से अधिक प्रोटानों के केन्द्र वाले किसी भी तत्व का परमाणु कभी भी स्थायी नहीं होता चाहे जितने ही न्यूट्रान क्यों न जोड़ दिये जाँय। फिर भी ८२ से अधिक प्रोटान वाले परमाणुओं का अस्तित्व है। यूरेनियम के

परमाणु संख्या ९२ है। इसका सबसे अधिक परिचित सहोदर यूरेनियम-२३८ है। इसके केन्द्र में ९२ प्रोटान और १४६ न्यूट्रान होते हैं यानी ५४ अधिक न्यूट्रान।

इन सब न्यूट्रानों के बावजूद यूरेनियम-२३८ स्थायी नहीं है। इसके परमाणु अस्थायी तो जरूर हैं लेकिन एकदम नहीं टूटते। टूटने की यह प्रक्रिया कुछ व्यवस्थित रूप से होती है। इसके परमाणु का अस्थायी केन्द्र केवल एक या दो उप-परमाणु कण फेंक देता है। यूरेनियम परमाणुओं की किसी भी मात्रा में, हरक्षण कतिपय संख्या टूटती रहती है या बिखरती रहती है या हर दिशा में छिटकती रहती है। इस प्रक्रिया को विकिरण (Radiation) कहते हैं। सन् १८९६ ई० में एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक बैकेरल ने सर्व-प्रथम इसका पता लगाया था। वैज्ञानिकों ने जब इस विकिरण पर चुम्बक का प्रभाव देखा तो उन्हें तीन प्रकार के विकिरणों का पता लगा। इस विकिरण में निकलने वाली एक प्रकार की किरणों का मार्ग चुम्बक के प्रभाव से थोड़ा मुड़ गया था। दूसरी प्रकार की किरणों का मार्ग पहिले प्रकार की किरणों के मार्ग के विपरीत मुड़ गया। तीसरी प्रकार की किरणों पर चुम्बक का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

पहिले प्रकार की किरणों को एल्फा किरण (Alpha rays) कहा गया। दूसरे प्रकार की किरणों को बीटा किरण (Beta rays) और तीसरी को गामा किरण (Gamma rays) कहा गया। आगे चलकर जब यह देखा गया कि एल्फा किरणों और बीटा किरणों में उप-परमाणु कण होते हैं तो उन्हें एल्फा कणों की बौछार कहा जाने लगा। बीटा कण की पहिचान सन् १९००

में हुई। इसको तेज गति करता हुआ इलेक्ट्रान ही पाया गया।

अब हम कह सकते हैं कि प्रोटान, इलेक्ट्रान और न्यूट्रान तीनों ही इस दिख पड़ने वाले जगत् की सब से छोटी चीजें हैं जिनका अस्तित्व हमें ज्ञात हो चुका है। इस विशाल विश्व की सभी छोटी बड़ी चीजें इन तीन प्रकार के कणों, और केवल इन्हीं तीनों से बनी हैं। इन तीनों के मिलन से परमाणु बनते हैं और परमाणुओं के एक साथ मिलने से अणु बनते हैं और अणुओं से तत्व बनते हैं। इन तत्वों को तरह तरह से इकट्ठा कर के लकड़ी, कांच कपड़ा पानी एवं हमारे शरीरों की हड्डियां खून और मांसपेशियां बनी हुई हैं।

वैसे तो प्राकृतिक तत्वों की संख्या ९२ है पर हमारी दुनियां की अधिकतर वस्तुओं का अधिकांश लगभग १४ तत्वों से बना हुआ है जिनमें हाइड्रोजन नाइट्रोजन आक्सीजन और क्लोरीन गैसें और कार्बन सोडियम मैगनीशियम ऐलुमिनियम, सिलिकान, फास्फोरस गन्धक, पोटैशियम और लोहा– ये ठोस तत्व शामिल हैं।

कहा तो यही जाता है कि इलेक्ट्रान प्रोटान और न्यूट्रान– ये तीनों कण ही मिलकर तारों ग्रहों और हमारी पृथ्वी के इस विशाल विश्व के निर्माण का प्रारम्भ करते हैं परन्तु सच तो यह है कि ऋण-विद्युत् के आवेश वाला (Negatively charged) इलेक्ट्रान ही इस काम को करने में सारी दौड़ धूप करता है। सभी परमाणुओं की सबसे बाहर की कक्षाओं पर निरन्तर घूमने वाले इलेक्ट्रान ही बनते बनते एक दूसरे के गलों में अपने हाथ डालकर घुलमिल जाते हैं और इस प्रकार मेलजोल के अपने क्षेत्रों को बढ़ाते

उसको तब निर्जीव कहने लगते हैं। जीवन कोई मूर्त वस्तु नहीं है; इसका न तो कुछ भार ही होता है और न इसके कोई आयाम (लम्बाई चौड़ाई इत्यादि) ही होते हैं। परन्तु होता है यह शक्ति-मान; इसमें प्रबल शक्ति होती है। किसी भी पौधे की उगती हुई जड़ चट्टान को भी तोड़ फोड़ कर उसके भीतर घुस जाती है। जीवन ने अपनी इसी शक्ति के बल पर जल स्थल और वायु पर विजय पाई है।

यद्यपि हम जीवन को उसके अपने किसी भी मूर्त एवं दृश्य रूप में देख तो नहीं पाते फिर भी बिजली के आवेशों से युक्त इलेक्ट्रानों और प्रोटानों तथा बिजली के आवेश से रहित न्यूट्रानों के प्राथमिक संघातों के बाद आगे जिन जिन क्रमों में होकर यह वनस्पतियों और मनुष्य प्राणियों के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति देता है उन्हें अब हमने भली भाँति जान लिया है। कार्बन, फोस्फोरस और हाइड्रोजन जैसे तत्वों के कुछ रेडियो-सक्रिय परन्तु स्थायी सहोदरों (Isotopes), जिन्हें अन्वेषक तत्व (Tracer-elements) कहते हैं, की मदद से हमने शरीर के कोषाणुओं में होने वाली आन्तरिक हल-चलों का पता लगा लिया है। शरीर-विज्ञान की इन खोजों में विद्युत्-संचालित अल्ट्रा-सेन्ट्रीफ्यूजों (Ultra-centrifuges) और दूसरे नये और सूक्ष्मग्राही उपकरणों से भी काफी मदद मिली है। इनमें "एक्स रे विकिरण" (X-ray diffraction) और इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप (Electron microscope) भी प्रमुख हैं। इन साधनों के बल पर आज हम जान गये हैं कि हमारे शरीर के कोषाणुओं (Cells) को बनाने वाले घटक क्या हैं; जैसे कि परमाणु, सजीव आमल

(Inorganic ions), जल के अणु अमिनो-एसिड, स्नेह (Fats) शर्करा (Sugars) और प्रोटीन। इन नये साधनों ने हमें यह भी बतला दिया है कि एन्ज़ाइम (Enzymes पाचक रस) कहे जाने वाले कुछ सूक्ष्म द्रव्यों के द्वारा परस्पर संयुक्त की गई कुछ रासायनिक प्रतिक्रियाओं की एक विस्तृत जञ्जीर या शृंखला को ही हम जीवन कहते हैं। जीवन की अभिव्यक्ति को रूप दैने को जटिल प्रक्रियाओं में एक दूसरी से सम्बन्धित अनेक रासायनिक प्रतिक्रियाओं की एक विशाल शृंखला होती है। किसी भी एक कोषाणु की क्रियात्मक (Metabolic) प्रक्रिया को सफल बनाने के लिये हजारों प्रकार के पाचक रसों (Enzymes) की आवश्यकता होती है।

सजीव कहे जाने वाले द्रव्य से जीवन की वास्तविक उत्पत्ति कैसे होती है इस बात को समझने के पहिले हमें हमारी पृथ्वी पर जीवन की सर्व प्रथम उत्पत्ति और स्पन्दन होने के समय उस (पृथ्वी) पर क्या अवस्थाएँ थी यह जान लेना अच्छा होगा।

कैम्ब्रियन युग (Cambrian period) से बहुत पहिले, आज से लगभग २ अरब वर्ष पहिले हमारी पृथ्वी की ऊपरी खोल, जिस पर हम रहते और चलते फिरते हैं बन रही थी। कुछ प्राकृतिक घटनायें ऐसी घटी कि पृथ्वी के भीतर की गैसें और पानी की भाप उस (पृथ्वी) के भीतरी भाग से निकल कर उसकी सतह पर चली आई। धीरे धीरे लाखों वर्षों के दौरान में, पानी की वह भाप घनीभूत होकर नदियों, झीलों और समुद्रों के रूप में बहने लगी।

और अजरामर बना देता है।

कहते हैं कि राजा सोमेश्वर, श्रीविन्द भगवत्पादाचार्य गोविन्द नायक चर्पटीनाथ कपिल व्यालि कपालि, कन्थडायन गोरखनाथ, नागार्जुननाथ, प्रातिनाथ, योगी श्रीलीनाथ इत्यादि अनेक ऐतिहासिक पुरुष इस रस के प्रयोग से जीवन्मुक्त और अजर-अमर होगये हैं। अभी कुछ ही वर्ष हुए, जयपुर (राजस्थान) की ओर एक साधु ने अनेक वर्षों के बाद सफेद धैमले का अन्तिम बारह वर्ष का कल्प कर रससिद्धि प्राप्त की थी। कहा जाता है कि इस सिद्धि के बाद उन साधु का शरीर हनुमानजी के शरीर की तरह पुष्ट हो गया था, लेकिन वे अपने इस शरीर का हल्के फूल की तरह उपयोग कर सकते थे। एक दिन यह अपने अखाड़े से गायब होकर चले गये और अनुमानतः अब हिमालय पर ही कहीं हैं।

रसेश्वर सम्प्रदाय तथा औषधि योग वाले नाथों और योगियों की तरह अमर हो जाने वाले सिद्धों की बात पर भले ही कोई विश्वास न करे फिर भी यह तो एक तथ्य है कि पारे और अभ्रक जैसे तत्व अपने ऊँचे आणविक भारों के कारण कार्बन की अपेक्षा, जिससे हमारे वर्तमान शरीर बने हुए हैं, अधिक दृढ़ और स्थायी आणविक गठनों के तत्व हैं और इस कारण बहुत कुछ सम्भव है कि इन तत्वों का शरीर में कराया गया प्रवेश उस शरीर को कार्बन की अपेक्षा अधिक स्थायित्व तो दे ही सकता है।

पारा एक तत्व है जिसका तत्वों की क्रम-तालिका में ८० वाँ स्थान है। इसका मतलब यह हुआ कि इसके एक परमाणु के केन्द्र में ८० प्रोटान-कण और १२० न्यूट्रान कण हैं। इसके केन्द्र के चारों

और ८० इलेक्ट्रान वरए अपनी अपनी "शेलों" में घूमते हैं। इसका अणु-भार २००.६ है। इसका मतलब भी १३.६ है।

अपनी तब से बाहर की कक्षा पर इलेक्ट्रानों को "सम्पूर्ति संख्या" (Saturation number) न होने के कारण यह तत्व आक्सीजन जैसे दूसरे कुछ तत्वों के साथ अपना संयोग कर लेता है, यद्यपि इसकी संयोग-शक्ति अधिक प्रबल नहीं होती। किसी तत्व के साथ एक बार मिल जाने पर पारा कुछ स्थायी संयुक्त द्रव्य बना लेता है।

सोडियम और पोटासियम से मिल कर पारा "सोडियम एमलगम" बनाता है और इस प्रक्रिया में काफी ऊष्मा, गर्मी या शक्ति उत्पन्न करता है। मैग्नेशियम के साथ मिलकर यह "मैगनीशियम एमलगम" बनाता है। स्मरण रखना चाहिये कि सोडियम, पोटासियम और मैगनीशियम तीनों ही हमारे शरीर में वर्तमान महत्वपूर्ण तत्व हैं। एसिडों के सम्पर्क में आकर भी पारा काफी स्थायी बना रहता है। हमारे शरीर में एसिड ही उसमें वर्तमान तत्वों को घुला कर उनका लय करते रहते हैं। एसिडों से अप्रभावित रहने के कारण पारा शरीर को दीर्घ-कालीन स्थायित्व देता है। ओक्सीजन के साथ मिलकर पारा दो तरह के "ओक्साइड" बनाता है जो Hg_2O और HgO हैं (यहाँ Hg का मतलब है पारा और O का मतलब है ओक्सीजन)। पहिले ओक्साइड को मर्‍युरस ओक्साइड" और दूसरे को "मर्क्युरिक ओक्साइड" कहते हैं।

क्लोरीन गैस (यह भी हमारे शरीर का एक तत्व है) के साथ पारे को गर्म करने पर "मर्क्युरिक क्लोराइड" बनता है। यह एक

तीव्र विष है और एन्टी-सैप्टिक है। इसलिये शरीर में, यदि मौजूद हो तो उन कीटाणुओं को पनपने नहीं देता जो शरीर को खोखला बनाकर उसकी मृत्यु का कारण बनते हैं। मयु रिक क्लोराइड के बीच ही आयन्स (Ions) भी नहीं बनते। इसका मतलब हुआ कि इसके इलेक्ट्रान और प्रोटान कणों के गठन स्थिर बने रहते हैं।

अब हम अभ्रक के तात्त्विक गठन और हमारे शरीर को चिर स्थायी बनाने के लिये उसकी उपयोगिता पर कुछ प्रकाश डालेंगे। अभ्रक, स्वयं अपने रूप में एक तत्त्व नहीं है परन्तु यह अनेक तत्त्वों के मिश्रण से बना हुआ द्रव्य है। इसमें मुख्यतः पोटाशियम, अलुमीनियम और सिलिका हैं। इसका मालिक्यूल सूत्र $KH_2Al_3(SiO_4)3$ है। इसका यह मतलब हुआ कि अभ्रक के किसी एक अणु में पोटाशियम का एक परमाणु, हाइड्रोजन के दो परमाणु, अलुमीनियम के तीन परमाणु और सिलिका या सिलिकन के तीन परमाणु होते हैं। यह सब तत्त्व अपने अकेले रूपों में यों संगठित नहीं हो सकते इसलिये अभ्रक के एक अणु को गठित करने के लिये यह सब ऑक्सीजन के साथ मिलकर पहिले तो अपने "ऑक्साइड" बनाते हैं और फिर तब उनकी यह ऑक्साइडें ही, अपने ऑक्सीजन परमाणुओं के माध्यम से अभ्रक के अणु के रूप में गठित हो जाती हैं। अभ्रक के अणु का प्रतिशत विश्लेषण है:—

सिलिकन	ऑक्साइड	४५.७१ प्रतिशत
अलुमीनियम	ऑक्साइड	३१.५७ प्रतिशत
(लोहे की) फैरिक	ऑक्साइड	१.१६ प्रतिशत
फैरस	ऑक्साइड	१.०७ प्रतिशत

पोटासियम ओक्साइड	६.९२ प्रतिशत
पानी	४.८६ प्रतिशत

इन ओक्साइडों और पानी के साथ इस गठन में कुछ कुछ अंश लीथियम ओक्साइड मैगनीशियम और कल्शियम ओक्साइड के भी होते हैं।

यहाँ पर एक बार फिर हम याद दिला देना चाहते हैं कि जैसा हम पहिले अनेक बार लिख आये हैं, हमारे शरीर के वर्तमान ढांचे में पोटासियम अलुमीनियम, हाइड्रोजन, आक्सीजन लोहा इत्यादि तत्व तो हैं ही केवल उसके मूल आधार के रूप में कार्बन है जो इस ढांचे का ४५ प्रतिशत है। शरीर को अमर बनाने के लिये जन सिद्धों ने अभ्रक और पारे का जो योग बताया है उसको क्रियान्वित करने में अभ्रक का सेवन या भक्षण कर हम केवल इतना ही करेंगे कि शरीर के ढांचे में कार्बन की जगह सिलिकन को बैठावें। यह सिलिकन भी तब तक अमर शरीर में कार्बन की तरह ही ४५ प्रतिशत होगा।

तत्वों की क्रम-तालिका में सिलिकन का १४ वाँ स्थान है। इसके केन्द्र में १४ प्रोटान-कण और १४ न्युट्रान-कण होते हैं। उस केन्द्र के चारों ओर १४ इलेक्ट्रान घूमते रहते हैं। कार्बन और सिलिकन दोनों एक ही वर्ग (Fourth group) के तत्व हैं। यह दोनों ही अधातु (Nonmetals) तत्व हैं। कार्बन के चार इलेक्ट्रानों की तरह सिलिकन भी अपनी आखिरी कक्षा पर घूमने वाले ६ इलेक्ट्रान कणों को दूसरे तत्वों के परमाणु- इलेक्ट्रानों से संयोग करने को हमेशा तैयार रखता है। इस प्रकार कार्बन और

सिलिकन दोनों एक दूसरे से बहुत अधिक समानता रखते हैं। और बातों में एक समान होते हुए भी इन दोनों में एक बहुत बड़ा फर्क है जो दोनों को दो अलग क्षेत्रों में बाँट देता है। कार्बन एक ऐसा तत्व है जो बड़ी आसानी से टूट फूट और बिखर सकता है जब कि सिलिकन अधिक स्थायी और सुदृढ़ गठन का तत्व है। सभी जानवरों और वनस्पतियों का मूल और अनिवार्य घटक जहाँ कार्बन है वहीं अजीव वस्तु का मूल और अनिवार्य घटक सिलिकन है। सिलिकन के ही बड़े बड़े अणुओं के समन्वयों या समासों से दुनियाँ की सभी चट्टानें और पहाड़ इत्यादि बने हैं।

अपने शरीरों के मूल-आधार तत्व कार्बन के अनुरूप ही मनुष्य आदि प्राणी जहाँ कुछ थोड़े से वर्षों तक ही अपना अस्तित्व बनाये रख सकते हैं वहीं सिलिकन के मूल आधार पर बने हुए पहाड़ आदि हजारों लाखों वर्षों तक वर्षा और धूप सहते हुए ज्यों के त्यों बने रहते हैं। कोई अचरज की बात नहीं यदि पारे और अभ्रक के योग से मनुष्य के शरीर के कोषाणुओं में सिलिकान अणुओं का प्रवेश करवा दिया जाय तो यह शरीर हजारों और लाखों वर्षों तक पहाड़ों की तरह ही चिर-युवा और अमर बना रहेगा। मनुष्य के शरीर की कार्बन से मिलकर तब अभ्रक की यह सिलिकन 'सिलिकन कार्बाइड' Silicon Carbide (Sic) बनायेगी।

यह कार्बाइड बहुत अधिक सख्त होगा। इसको "कार्बोरण्डम" नाम भी दिया गया है। यह इतना सुदृढ़ होगा कि बहुत ही ऊँचे तापमान पर भी आक्सीजन इस पर कोई असर न कर सकेगी। कोई भी एसिड इस पर अपना असर नहीं कर सकेगा।

जिस प्रकार कार्बन के परमाणु हाईड्रोजन और आक्सीजन के परमाणुओं से मिलकर कार्बोहाइड्रेट्स बनाकर मधुर प्राणी सृष्टि का प्रारम्भ करते हैं वैसे ही सिलिकन भी आक्सीजन के परमाणुओं के जरिये 'सिलिको कार्बोहाइड्रेट्स' (Silico-carbohydrates) बनाकर मनुष्य शरीर को अजर और अमर बना देगा।

भारतीय आयुर्वेद के प्रवर्तक ऋषियों ने बहुत पहिले पारे और अभ्रक के इन अद्भुत गुणों का साक्षात्कार कर लिया था। इसीलिये उन्होंने संग्रहणी आदि घातक रोगों से जीर्ण शीर्ण हुए रोगियों की चिकित्सा के लिये पारे के योग से बनी हुई "पर्पटी" औषधि का विधान किया था। आज भी हम आये दिन आयुर्वेदिक चिकित्सकों को पर्पटी के प्रयोग से अनेक मृत-तुल्य रोगियों को नीरोग स्वस्थ और हृष्टपुष्ट बनाते हुए प्रत्यक्ष देखते हैं। इसी प्रकार खांसी और राजयक्ष्मा जैसे घातक रोगों का अभ्रक भस्म द्वारा आपूर्व उपचार होते हुए देखते हैं।

विज्ञान की आश्चर्य जनक प्रगति के कारण आज हम कुछ पाश्चात्य चिकित्सकों को भी इस दिशा में प्रयास करते देखते हैं। बुढ़ापे को दूर कर मनुष्य को हमेशा जवान बनाये रखने के कुछ थोड़े से प्रारम्भिक प्रयोग अभी हाल में ७८ वर्षीय डा० पोलनैस्हन्स ने किये हैं। यह स्विट्जरलैण्ड के निवासी हैं। ग्रन्थीयों ग्रन्थियों (Glands) और बुढ़ापे के कारण होने वाले रोगों का इलाज करने के लिये डा० नेहन्स ने कुछ इन्जेक्शन तैयार किये हैं। उनकी चिकित्सा पद्धति को सेलुलर थेरापी (Cellular therapy) का नाम दिया गया है। ईसाई-जगत् के पिछले वर्ष गुरु पोप प्रसिद्ध

लेखक सोमरसेट मॉम जर्मनी के डा० ऐडेन्योर और प्रसिद्ध अभिनेत्री ग्लोरिया स्वान्सन ने डा० नेहन्स के इन्जेक्शन लिये थे।

डा नेहन्स के यह प्रयोग अभी अपनी शिशु-अवस्था में ही हैं; इसलिये उनका कहना है कि उनके यह इन्जेक्शन युवावस्था को तो अभी तक वापिस नहीं लौटा पाते परन्तु वह युवावस्था की शारीरिक चेष्टाओं को तो वापिस ला सकते हैं। इस चिकित्सा में डा० नेहन्स कुछ जीवित कोषाणुओं के इन्जेक्शन देते हैं।

कुछ चुने हुए जानवरों के अंगों से जीवित कोषाणु अलग निकाल लिये जाते हैं। उन कोषाणुओं को लगभग २४ घण्टों तक एक उपयुक्त द्रव में जीवित रक्खा जा सकता है। परन्तु डा० नेहन्स उस जानवर के अंगों से उन कोषाणुओं को निकालने के एक या दो घण्टे के भीतर ही उनका इंजेक्शन देना अधिक लाभदायक मानते हैं। बीमार के जिन अंगों को नया जीवन देना होता है, जानवर के उन्हीं अंगों से यह कोषाणु लिये जाते हैं। यह इंजेक्शन न केवल उन्हीं को दिये जाते हैं जो बूढ़े हो रहे हैं; परन्तु उन डाक्टर का तो यहाँ तक दावा है कि किसी भी एक सुन्दर युवती को यदि यह इंजेक्शन लगा दिये जाँय तो उसकी युवावस्था और सौन्दर्य को अनेक वर्षों तक सुरक्षित रक्खा जा सकेगा।

प्रत्येक इंजेक्शन का प्रभाव प्रायः १० वर्षों तक रहेगा। सोवियत सङ्घ की चिकित्सा विज्ञान अकादमी की प्रयोगशाला के प्रोफेसर वी ए. नैगोवस्की और उनके सहकारियों ने मरे हुए आदमी को फिर से जिलाने देने की दिशा में कुछ प्रयोग किये हैं। हृदय की गति रुक जाने और साँस बन्द हो जाने के ५-६ मिनट

घण्टे तक यह मरे हुए आदमी को जिला पाने में सफल हुए हैं उस समय तक शरीर में रक्तसंचार की क्रिया जारी रहती है यद्यपि उसकी रफ़्तार धीमी अवश्य पड़ जाती है और मस्तिष्क के कोशाणुओं का क्षय तब तक प्रारम्भ नहीं होता। मुर्दों को जिलाने के लिये धमनियों के रास्ते उसके शरीर में खून पहुंचाया जाता है। कृत्रिम रूप से उसे सांस दिलाई जाती है, हृत्पिण्ड की मालिश की जाती है और यदि हृदय की पेशियां ठीक से काम करना बन्द कर देती हैं तो बिजली के एक यन्त्र की सहायता से हृदय की क्रिया को उत्तेजित किया जाता है।

मनुष्य आज ऊपर आकाश में ग्रहों और तारों तक पहुँच कर वापिस लौट आने के मन्सूबे बांध रहा है। बहुत सम्भव है कि भविष्य में किसी एक दिन वह ऐसा करने में सफल हो जाय। यदि कभी ऐसा हो सका और मनुष्य ग्रहों और तारों की यात्राओं पर आने जाने लगा तो बुढ़ापे और मृत्यु को जीतने का एक और अस्त्र अनायास उसके हाथ लग जायेगा। आइन्स्टीन के प्रसिद्ध "सापेक्ष वाद" का एक निष्कर्ष यह कहता है कि यदि बिल्कुल एक जैसी दो घड़ियों को हम एक ही साथ एक निश्चित समय पर चालू करें और यदि उन दोनों में से एक घड़ी को चालू हालत में अत्यन्त ऊंचे वेग से गति करनेवाले एक राकेट-यान पर ऊपर आकाश में यात्रा पर भेजदें और दूसरी घड़ी को चालू हालत में यहीं रखें तो जब यह यात्रा पर गई हुई घड़ी लौट कर पृथ्वी पर वापिस आयेगी तो हम देखेंगे कि हमारे पास यहां रक्खी हुई घड़ी में तब तक जो कुल समय बीता है उसका आधा समय ही उस यात्रा से लौटी हुई घड़ी

में बोला हुआ होगा। यदि यात्रा करते समय उस घड़ी ने प्रकाश की गति के हैं भाग की गति से यात्रा की होगी तो पृथ्वी पर रक्खी हुई घड़ी में दिखाये गये बीते हुए प्रत्येक एक घण्टे की बजाय यात्रा से लौटी हुई वह घड़ी केवल आधा घंटा ही बीता हुआ दिखलावेगी। यह बात उस प्रत्येक चीज पर लागू होगी जो समय की माप रखती हो जो समय के साथ ही आगे चलती या बढ़ती हो समय के साथ इस बढ़ने को ही हम उम्र कहते हैं। निश्चय ही हमारा शरीर भी ऐसी ही एक काल मापक वस्तु है

आज तक हम प्रकाश के वेग को ही गति की पराकाष्ठा मानते हैं। यदि कोई यान प्रकाश वेग से भी अधिक वेग से गति करे तो उसमें बैठे हुए यात्री धीरे धीरे उम्र में छोटे और अधिक छोटे होते चले जावेंगे और सम्भावना तो यह है कि जब कभी वह वापिस पृथ्वी पर लौटेंगे तब अपने आपको अपने जाने के समय से कुछ वर्ष पहिले ही पृथ्वी पर सशरीर लौटे हुए पावेंगे। ब्रह्माण्ड का यह एक अनोखा रहस्य है प्रकृति का एक ऐसा कारनामा जो हमारी सहज सूझ बूझ और समझ से परे की चीज है।

निश्चय ही जब कभी ऐसा सम्भव हो सकेगा तब हम अपनी ६० वर्ष की अवस्था में ऐसे ही एक यान में बैठकर जो प्रकाश की गति (प्रति सैकण्ड १८६,००० मील) से भी अधिक तेज गति (मान लीजिये ८२ ००० मील प्रति सेकण्ड) से सपाटे भरता होगा सुदूर आकाश में एक तारे की यात्रा पर निकल पड़ेंगे और हमारे अपने काल-मान के अनुसार कुछ वर्ष वहाँ भी घूमते हुए ही बिताकर जब वापिस पृथ्वी पर लौटेंगे तो देखेंगे कि युवा होने की तो बात ही क्या

उस समय तक तो हम माँ के पेट में ही नहीं पड़े हैं। हम जिसे एक तथ्य मानते हैं – वास्तव में घटी हुई एक घटना मानते हैं, पहले ही यों मज़ा देने वाली प्रकृति और भुगता देने वाले काल की महिमा अप्रमेय है।

यह बात निरी गप्प न होकर आने वाले भविष्य की एक वैज्ञानिक द्वारा की गई झलक है। इंग्लैण्ड के प्रमुख मेडीकल जरनल "लान्सेट (Lancet) के अगस्त १९६६ ई० के अङ्क में प्रकाशित एक वैज्ञानिक की राय है।

वास्तव में काल ही शक्ति का स्रोत और जनक है। जिस प्रकार प्रबल वेग से बहता हुआ नदी का जल शक्ति और चालक बल उत्पन्न करता है ठीक वैसे ही प्रचण्ड गति से भागता हुआ काल भी करता है। लेनिनग्राड (रूस) के निकट पुलकोवो वेधशाला के प्रोफेसर निकोलाई कोज़ीरेव (Nikolai Kozyrev) ने इस सिद्धान्त का विकास किया है। काल के बहाव से उत्पन्न होने वाली शक्ति की माप की सबसे छोटी इकाई है काल का वह भाग जिसमें एक कारण विकसित और परिवर्तित होकर कार्य बन जाता है। प्रो० कोज़ीरेव ने इस इकाई का मान प्रति सेकण्ड लगभग ७०० किलोमीटर माना है।

हमारे जन्म और मृत्यु का नियामक काल ही है। काल के जिस माप से हम शासित हो रहे हैं वह प्रति सेकण्ड १८६००० मील (प्रकाश की गति) है। इस गति से अधिक तीव्र गति हमारे जन्म और मृत्यु की काल-व्यवस्था को बहुत पीछे छोड़ जाती है। इसी कारण उस २१०००० मील प्रति सेकण्ड की गति से यात्रा करने वाले व्यक्ति, एक निश्चित अवधि तक यात्रा कर चुकने पर, वह

वापिस पृथ्वी पर लौटेंगे तो निश्चय ही अपेक्षाकृत मन्द गति से नापने वाले अपने जन्म-काल को पीछे छोड़कर उसके बहुत पहिले ही वहाँ पहुँच जायेंगे। जब जन्म ही तब तक नहीं हुआ होगा तो बुढ़ापा और मृत्यु तो दूर की बातें होंगी ही।

"सोवियत इकोनोमिक जर्नल" के १४ अप्रेल सन् १९६१ ई० के अंक में प्रकाशित अपने एक लेख में डा० बोरिस क्रोसोव्स्की (Dr Boris Krossovksy) ने, जो मास्को के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं लिखा था; "The state of weightlessness affecting travellers in space would keep their bodies from ageing during space flight." अर्थात् "देश" में सफर करने वाले यात्रियों को प्रभावित करने वाली भार-शून्यता की स्थिति उनके शरीरों को उस यात्रा के दौर में बूढ़े होने से बचावेगी। इसका कारण बताते हुए उन्होंने आगे लिखा— "Time goes by much more slowly in cosmic space than on earth" अर्थात् "विश्व देश" में काल पृथ्वी की अपेक्षा बहुत अधिक धीमी गति से चलता है।

आगे चलकर इस प्रक्रिया को समझाते हुए वह लिखते हैं— (The state of weightlessness alleviates cells of our body of part of the functional tension which weighs on men on the heart, and thereby it protects them from ageing.) अर्थात् भार शून्यता की स्थिति हमारे शरीर के कोषाणुओं के उस क्रियात्मक तनाव को बहुत कम कर देती है— उस तनाव को जो मनुष्य के हृदय

पर मार डालता है उसे बूढ़ा बनाता है और इस प्रकार उसको बुढ़ापे से बचाती है। अन्त में वह लिखते हैं:- Soon we shall no longer be surprised to see patients from space) sanatoria return to earth, not only cured of their ailments but also rejuvenated." अर्थात् शीघ्र ही 'स्पेस' के किसी एक चिकित्सा-गृह से लौटे हुए रोगियों को न केवल अपनी बीमारियों से मुक्त हुए अपितु पुनर्यौवन प्राप्त किये हुए देख कर हमें आश्चर्य नहीं होगा।

सच तो यह है कि जीवन पर विश्व-प्रकृति ने बुढ़ापे और मृत्यु को बरबस लाद तो दिया है फिर भी कुँए में बँधे हुए बैल की तरह वह इस बोझ भार और बन्धन को तोड़ फेंक कर अमर हो जाने की लालसा में हमेशा आतुर रहता है। उसकी सतत पुकार रही है "मृत्योर्मा अमृतङ्गमय" (मुझे मृत्यु से दूर अमृत की ओर ले चलो)। मृत्यु को दूर ढकेलने के हम दुष्प्रयास करते रहते हैं- भले ही हमें बार बार इस दुष्प्रयास में मुँह की खानी पड़े। हमारे इस दुष्प्रयास को कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी व्यक्त किया है:—

ए अनन्त चराचरे स्वर्ग-मर्त्ये छेये
सब चेये पुरातन कथा, सब चेये
गम्भीर क्रन्दन 'येते नाहि दिबो' हाय
तबु येते दिते हय तबु चले जाय।

अर्थात् इस अनन्त चराचर में स्वर्ग से लेकर पृथ्वी तक सबसे पुरानी बात, सबसे गहरा रोना यही है कि "मैं तुम्हें जाने न दूँगा।" लेकिन हाय तो भी जाने देना पड़ता है, तो भी चला जाता है।

मृत्यु को अनिवार्य मानकर उसके सामने घुटने टेक देने की इस नैराश्यपूर्ण प्रवृत्ति के विरुद्ध हमें वैदिक भारत के एक सत्य-द्रष्टा ऋषि के यह आशा-भरे शब्द मानो हमें हमारे सही स्वरूप का आभास देते हुए सुन पड़ते हैं—

"------ अगन्म ज्योतिरमृता अभूम। दिवम्पृथिव्या अध्यारुहामाविदाम देवान्स्वर्ज्योतिः।" अर्थात् हम ज्योति (प्रकाश) में पहुँच कर अमर होगये हैं। पृथ्वी से चलकर हम प्रकाश पूर्ण आकाश में ऊपर चढ़ गये हैं। अब हम प्रकाश के रूप में स्थित देवों (प्राणियों) को जानते हैं, उनके वासस्थान को जानते हैं और (उनके दिव्य स्वरूप की आधार) ज्योति को जानते हैं।

वेद के इस ऋषि ने इन शब्दों के माध्यम से हमें एक दिव्य-तथ्य की झलक दी है। हम सब अपने शरीरों के मूल परम इलेक्ट्रान कणों के निरन्तर बहने वाले प्रकाश-पुञ्ज में परिवर्तित होते हुए अपने सहज रूपों में सदा अमर बने रहते हैं — कैसे और किस प्रकार इसका विवेचन हम अगले परिच्छेद में करेंगे।



आठवाँ परिच्छेद

हमारा अमर अस्तित्व

पिछले परिच्छेदों में मनुष्य शरीर के सभी अंगों का मूल-भूत रासायनिक और वास्तविक विश्लेषण कर हम यह बात स्पष्ट कर आये हैं कि यद्यपि व्यावहारिक सहूलियत के लिये हमने उन सभी अङ्गों के अलग अलग नाम रख छोड़े हैं फिर भी उन सब के गठन और बनावट में केवल और एक मात्र परमाणुओं का ही उपयोग किया गया है। न केवल हम मनुष्यों के शरीर अपितु समस्त प्राणी, पहाड़ नदी, समुद्र पृथ्वी सूर्य चन्द्र और तारे सब के सब, अपने भिन्न भिन्न आकार-प्रकारों गुणों और धर्मों के बावजूद, केवल और एक मात्र परमाणुओं के ही बने हुए हैं। परमाणु के अपने मूल-रूप में आकर समस्त जीव और अजीव जगत् एक रूप हो जाते हैं। एक भारतीय ऋषि के शब्दों में "यत्र विश्वम्भवत्येकनीडम्" (परमाणु ही वह एक मात्र आधार है जहां यह सम्पूर्ण विश्व एक ही घोंसले में आ बैठता है)। विज्ञान ने आज हमें जिस सृष्टि-तत्व की वास्तविक झलक दी है उससे यह स्पष्ट होजाता है कि नाम और रूप के लाखों और करोड़ों भेदों के बावजूद सम्पूर्ण चर और अचर सृष्टि अपने मूल रूपों में केवल और एक मात्र परमाणुओं की ही बनी हुई है। जिस प्रकार हम सोने के पचासों प्रकार के गहने बनाते हैं और उनके अलग

अलग नाम भी रखते हैं फिर भी हम यह बखूबी जानते हैं कि नामों और रूपों में वैभिन्य होते हुए भी वह सब एक ही तत्व सोने के बने हुए हैं। इसी कारण हम उन सबको "सोने के गहने" कहकर यह बात स्पष्ट कर देते हैं कि उन सबका मूल उपादान केवल सोना ही है। ठीक यही बात विश्व-सृष्टि पर भी लागू होती है। परमाणुओं और यह कहना और भी अधिक सत्य होगा कि प्रोटनों न्यूट्रनों और इलेक्ट्रनों के कोटि कोटि विविध आकारों और रूपों में संगठित पिण्डों को ही हम बराबर सृष्टि या विश्व-सृष्टि कहते हैं।

परमाणु चाहे वह किसी एक तारे के गठन में लगे हुए हों और चाहे किसी एक चींटी अथवा एक हाथी के शरीर में सब जगह उनका एकसा ही गठन है: केन्द्र में एक या अधिक प्रोटन और न्यूट्रन कण एवं उस केन्द्र के चारों ओर एक या अधिक कक्षाओं पर प्रति सेकण्ड १८६, ० मील के वेगसे निरन्तर दौड़ते रहनेवाले इलेक्ट्रनकण। सरलतम और क्रम-तालिका के अंक १ के तत्व हाइड्रोजन (एक प्रोटन और एक इलेक्ट्रन) से लेकर सर्वाधिक जटिल और भारी तत्व यूरेनियम (९२ प्रोटन १४३ १४६ न्यूट्रन और ९२ इलेक्ट्रन) तक सब तत्व इन तीनों कणों (केवल हाइड्रोजन को छोड़कर; क्योंकि उसमें प्रोटन और इलेक्ट्रन ही होते हैं और न्यूट्रन नहीं होता) को ही क्रमशः एक एक कर बढ़ती हुई संख्याओं से गढ़े हुए हैं। उन सब तत्वों में कोई मौलिक भेद नहीं होता केवल इन तीनों कणों का संख्यागत भेद ही उनके दिख पड़ने वाले स्वरूप भेदों का जनक और कारण है। यह तीनों कण ही सम्पूर्ण विश्व के प्राथमिक बंध-प्रवर्तक हैं। इन तीनों कणों को लेकर ही विश्व के सब चर और अचर बड़े

जाने वाले सिन्ड एक ही गोत्र, एक ही बिरादरी के भाई-भाई हैं।

जैसा कि हम चौथे परिच्छेद में लिख आये हैं इन तीनों कणों में प्रोटन कण पर धन विद्युत् का आवेश रहता है इलेक्ट्रन कण पर ऋण विद्युत् का आवेश रहता है और न्यूट्रन कण पर किसी तरह का भी विद्युत् आवेश नहीं रहता। विद्युत् के यह धनात्मक या ऋणात्मक आवेश क्या हैं और इनका उद्गम कहाँ है इस बात को अबतक तो हम नहीं जान पाये हैं। विश्व का यह एक महान् रहस्य है। इतनी बात तो हम अवश्य जानते हैं कि यह दोनों वो बुनियादी उपादान हैं जिनसे परमाणु की रचना हुई है। हो सकता है कि यह दोनों सांख्य दर्शन में वर्णित पुरुष और प्रकृति हों धन-विद्युत् तो पुरुष और ऋण विद्युत् प्रकृति। ऐसा होना बहुत कुछ सम्भव भी है क्योंकि सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष तो सृष्टि-रचना में उदासीन बना हुआ केवल तटस्थ बैठा रहता है और प्रकृति उस पुरुष को लुभाकर, उसके चारों ओर एक चुम्बक नर्तकी की तरह नाचकर, सृष्टि-रचना के समूचे प्रपंच का विस्तार करती है। आज का विज्ञान भी यही कहता है कि धन शक्ति का प्रोटन तो महज केन्द्र में ही बैठा रहता है परन्तु ऋण-शक्ति का इलेक्ट्रन उसके चारों ओर एक वृत्त में नाचता हुआ दूसरे परमाणुओं को अपने परमाणु से चिपका कर उनसे बड़े बड़े अणु और तत्व बनाता है और इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व का निर्माण करने में मदद करता है।

छान्दोग्योपनिषद् के एक ऋषि ने कहा था— "सोऽकामयत। एकोऽहम्बहुस्याम्प्रजायेय" अर्थात् उसने (विधाता पुरुषने) कामना की "मैं अकेला हूँ बहुत बनूँ और इसलिये सन्तान-सृष्टि को जन्म

हूँ । पुरुष की इस एक से अनेक बनने की कामना को पूरा करने का बीड़ा मानो इस इलैक्ट्रन ने ही उठाया था ।

यह इलैक्ट्रन भी एक अद्भुत और विज्ञान को असमंजस में डाल देने वाली चीज है । एक कुशल बहुरूपिये की तरह यह भी कभी कण (Particle) बन जाता है और कभी तरंग (Wave) बन जाता है । जिस जगह भी रूप बनाने से उसको सृष्टि-रचना के अपने उठाये हुए काम में मदद मिलती हो वह तुरन्त उस जगह उसी रूप को ग्रहण कर लेता है । यहाँ पर हमें इलैक्ट्रन के इन दोनों रूपों के मौलिक अन्तर को समझ लेना चाहिये । अपने कण रूप में रहकर गति करते समय इलैक्ट्रन की सम्पूर्ण शक्ति (Energy) इसके कण में बंधी हुई रहती है । जब यह एक तरंग बनकर गति करता है तो पानी की तरंगों की तरह इसकी शक्ति भी अधिक और अधिक विस्तृत क्षेत्र में बँटती चली जाती है और "देश" (Space) के जितने भाग तक इसकी पहुँच हो जाती है वहाँ सर्वत्र इसकी शक्ति भी बिखरती जाती है । इस तरंग की सम्पूर्ण यात्रा भर इसकी शक्ति की कुल मात्रा इसकी बहाव-मार्ग के साथ साथ "देश" में लगातार बिखरती चलती है । इस कारण आगे और आगे बढ़ते हुए इसके बहाव के साथ साथ इस तरंग की तीव्रता कम होती चली जाती है और यह धीरे धीरे कमजोर होती जाती है ।

इन दोनों रूपों में दूसरा अन्तर यह है कि यदि कोई कण गति करता हो और ऐसा करते हुए मार्ग में उसके ठीक सामने कोई रुकावट आ खड़ी हो तो यह वहीं रुक जायेगा । उस रुकावट के ऊपर या नीचे की ओर मुड़कर वह आगे नहीं बढ़ सकेगा । तरंग की बात

[illegible] से बिल्कुल [illegible] है। [illegible] रस्थिति का
कोई रुकावट [illegible] नहीं होने [illegible] देती रहती
पीछे की ओर मुड़कर [illegible] ट न जाने पर
जाने पर मुड़ जाने [illegible] । इलेक्ट्रन की
कोई चीज [illegible] यह गुजरती है,
के हाथ में [illegible] देने की क्षमता
के इन "बहावों" और [illegible] गों कि उस पर
और "ढाल" (Troughs) [illegible] तक मौजूद रहा
किन्हीं भी दो बहावों और [illegible]

लम्बाई (Wave-length [illegible] कुछ विद्वान् यह

[illegible] न्य नहीं है। जो
प्रोटन [illegible] (Six dimen
[illegible] अपनी तरंगों क
[illegible] तिक देश के तो
पहिले [illegible] पीछे की ओर
इलेक्ट्रन [illegible] तीन आयामों
[illegible] आयामों की
और [illegible] इसलिये उन
प्रोटन [illegible] अस्तित्व ही
[illegible]

[illegible] कि जैसे पूर्व-वर्ण
[illegible] ही उसका वेग
[illegible] रहता है

की तरंगों को उस इलैक्ट्रन का ही एक भाग मानें तो इस बात का यही मतलब होगा कि एक इलैक्ट्रन एक परमाणु से भी बड़ा है। यदि यह बात हो तो हम एक अजब उलझन में फँस जायेंगे। हम तब यह नहीं समझ पायेंगे कि किस प्रकार एक अकेले परमाणु की कक्षाओं पर अनेक इलैक्ट्रन उस परमाणु के भाग बनकर घूम सकते हैं? क्योंकि किसी दूसरे कण से टक्कर होजाने पर ही एक इलैक्ट्रन अपनी सम्पूर्ण यान्त्रिक शक्ति का उस टक्कर मारने वाले कण को सौंप सकता है इसलिये निश्चय ही उसकी यह शक्ति उस इलैक्ट्रन में किसी एक ही जगह केन्द्रित रहती होगी। डन्सन ने इस बात को सरलता से समझाने के लिये एक रूपक दिया है। मक्खी के जाले के तन्तु बहुत ही बारीक और सूक्ष्म होते हैं। मान लीजिये कि उस जाले के कुछ तन्तुओं में प्रत्येक के किसी भाग पर एक एक मक्खी बैठी हुई है। हवा में उड़कर कहीं कहीं भी वह तन्तु जायेगा उस तन्तु पर बैठी हुई वह मक्खी भी उसके साथ साथ वहीं जा पहुँचेगी। ठीक इसी प्रकार जिस बिन्दु पर उस इलैक्ट्रन की शक्ति केन्द्रीभूत है वह उसके चारों ओर फैली हुई तरंगों द्वारा मार्ग निर्देश पाकर सभी दिशाओं में एक अनिश्चित दूरी तक जा सकेगा। यदि उन तरंगों की राह में कोई एक परमाणु रुकावट बनकर आ खड़ा होगा तो वह तरंगे उस रुकावट पर होकर उस पार चली जायेंगी और ऐसा करती हुई अपनी मन्तव्य दिशा बदल लेंगी। तरंगों का यह दिशा-परिवर्तन इलैक्ट्रन पर लौटाया जाकर उसके मार्ग पर अनुरूप असर करेगा।

मालूम होता है कि यह तरंगें उस इलैक्ट्रन की अग्रगामी मार्ग

बधिकाएं हैं जो चारों ओर बिखरे हुए पदार्थ की उपस्थिति का मालकर उसके अनुसार ही उस इलेक्ट्रन को मार्ग-निर्देश देती रहती हैं। इस प्रकार वह इलेक्ट्रन उन परमाणुओं के निकट न आने पर भी अपनी तरंगों द्वारा उनसे प्रभावित हो सकता है। इलेक्ट्रन की तरंगों को हम "देश" (Space) में जहाँ होकर वह गुजरती हैं एक खास दिशा की ओर उस इलेक्ट्रन को मार्ग-निर्देश देने की क्षमता की चाबुक मान सकते हैं। इस प्रकार अपनी तरंगों के बल पर इलेक्ट्रन अपनी भौतिक स्थिति से भी दूर बहुत दूर तक मौजूद बना रहता है।

यहाँ आकर एक विकट प्रश्न खड़ी होती है। कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि इलेक्ट्रन-तरंगों का कोई भौतिक अस्तित्व नहीं है। दो इलेक्ट्रनों को अपनी तरंगों के लिये छः आयामों (Six dimensions) का "देश" चाहिये और तीन इलेक्ट्रनों को अपनी तरंगों के लिये नौ आयामों का "देश" चाहिये परन्तु भौतिक देश के तो वस्तुतः तीन ही आयाम होते हैं; दाहिने और बायें पीछे की ओर और आगे की ओर एवं ऊपर और नीचे। "देश" जहाँ तीन आयामों से अधिक का है ही नहीं वहाँ छः और छः से अधिक आयामों की आवश्यकता रखने वाली तरंगें हो ही कैसे सकती हैं। इसलिये उन विद्वानों के मतानुसार इलेक्ट्रन-तरंगों का कोई भौतिक अस्तित्व ही नहीं है।

दूसरी एक विकट यह है कि इलेक्ट्रन-तरंगों के जैसे गुण-धर्म बतलाये गये हैं उनको निभाने के लिये निश्चय ही उनका वेग प्रकाश वेग से अधिक होना चाहिये। परन्तु आइन्स्टीन का कहना है कि

किसी भी भौतिक प्रक्रिया का वेग प्रकाश-वेग से अधिक हो ही नहीं सकता। इसलिये इलेक्ट्रन-तरंगों का कोई भौतिक अस्तित्व नहीं हो सकता।

जब हम तरंगों के एक विशिष्ट पहलू पर जिसे "समूह" (Group) कहते हैं और करते हैं तो यह दिक्कत दूर हो जाती है। जब कुछ नियमित तरंगें जो अपने वेग और तरंग-लम्बाइयों में एक दूसरी से काफी भिन्न होती हैं एक साथ मिलती हैं तब एक अनियमित "तूफान-क्षेत्र" (Stormy region) उठ खड़ा होता है। इस क्षेत्र का विस्तार छोटा होता है और क्योंकि इस क्षेत्र का भी इलेक्ट्रन के बराबर वेग होता है इसलिये यह इलेक्ट्रन के साथ २ ही चलता है। इसका यह मतलब होता है कि वह नियमित तरंगें जो ऐसे अनियमित "तूफान-क्षेत्र" को जन्म देती हैं इस "तूफान क्षेत्र' के पीछे से निरन्तर आ आकर इस 'क्षेत्र" में होकर दौड़ती रहती हैं जिससे इस क्षेत्र को निरन्तर ताजी-तरंगों का योगदान मिलता रहता है। यही कारण है जिससे वह पद्रक-तरंगें उस इलेक्ट्रन के लिये उसके गन्तव्य-पथ की अग्रिम जानकारी लाकर देने का काम करती हैं। इसी कारण ही यह दिक्कत कि इलेक्ट्रन का वेग प्रकाश वेग से अधिक कैसे हो सकता है दूर हो जाती है।

जो भी हो इस बात से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि उक्त प्रक्रिया में उत्पन्न होने वाला तूफान-क्षेत्र एक भौतिक वास्तविकता है। यह 'क्षेत्र' तो केवल उस इलेक्ट्रन की वहाँ उस 'क्षेत्र" में उपस्थिति होने की सम्भावना का ही एक द्योतक है। इसलिये यह "क्षेत्र" महज एक सम्भावना का द्योतक होता है और सम्भावना

कोई भौतिक वस्तु नहीं होती। इस बात को लक्ष्य कर श्रोडिंगर (Schrodinger) ने कहा है "Something that influences the physical behaviour of something else must not in any respect be Called less real than the something it influences, whatever meaning we may give to that dangerous epithet 'real" अर्थात् कुछ भी (प्रक्रिया वस्तु या और कुछ) जो किसी दूसरी (प्रक्रिया या वस्तु) के भौतिक आचरण को प्रभावित करती है किसी भी हालत में उस 'दूसरी' से जिसे वह प्रभावित करती है कम 'वास्तविक' नहीं कही जा सकती – चाहे हो हम उस खतरनाक विशेषण "वास्तविक" को चाहे जो अर्थ दें।" यह हम देख ही चुके हैं कि इलेक्ट्रन-तरंगें इलेक्ट्रनों के विचरण को प्रभावित करती रहती हैं उन इलेक्ट्रनों को जो भौतिक वस्तु होते हैं।

इसका यही निष्कर्ष है कि इलेक्ट्रन-तरंगों की चाहे जो प्रकृति हो वह 'देश' (Space) में सतत सभी दिशाओं में एक अपरिच्छिन्न रूप में अपना विस्तार-क्षेत्र बनाये रखती हैं।

इलेक्ट्रन का जन्म विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र (Electro-magnetic field) में से हुआ है। इसी क्षेत्र की अन्य संतानें प्रोटन, पॉज़िट्रन और फोटन हैं। आधुनिक भौतिक विज्ञान इस मान्यता के आधार पर ही चलता है कि पूर्ण भौतिक विश्वों के क्षेत्र का सम्पूर्ण 'देश' (Space) एक क्षेत्र (Field) है अथवा यह कहना अधिक युक्ति-संगत होगा कि "देश" में एक ही क्षेत्र के तीन विभाग हैं जो विद्युत्-चुम्बकीय गुरुत्वाकर्षणीय और अणु-नाभिकीय हैं। विद्युत्

चुम्बकीय क्षेत्र की विद्युत् चुम्बकीय शक्ति से ही इलेक्ट्रन प्रोटन पॉज़िट्रन और अन्य कणों के कण फोटन का जन्म हुआ है। इस क्षेत्र की सब सन्तानों के दो रूप होते हैं,– कण और तरंग। तरंग के रूप में इन सबका सर्वत्र समान प्रसार हो सकता है। तरंग होने के कारण ही यह सब अपनी अपनी विविध 'फ्रीक्वेन्सी' (Frequency) से विकिरण (Radiation) अथवा प्रकाश उत्पन्न करती हैं। – विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र की सभी सन्तानों को यह गुण विरासत में मिला हुआ है। इन सबकी गति प्रति सेकण्ड ३ लाख कीलोमीटर अथवा १८६ ००० मील है।

विश्व-सृष्टि की समूची प्रक्रिया में हम मुख्यतः इलेक्ट्रन को ही सक्रिय और प्रमुख भाग लेते हुए देखते हैं। इलेक्ट्रनों की तेज गति में ही आग और ऊष्मा या गर्मी पैदा होती है। बिजली की जो शक्ति हमारे घरों और सड़कों को रोशन करती है और बड़े बड़े कारखानों को चलाती है वह इलेक्ट्रनों के "बहते हुए" समुद्र के सिवाय और कुछ भी नहीं है। जब इलेक्ट्रनों की बहुत बड़ी संख्या अपने परमाणुओं से अलग हो जाती है और एक तार में से चलती है तब हम कहते हैं कि बिजली तार में से "बहती" है। गति करते हुए इलेक्ट्रनों को बिजली कहते हैं। इसी प्रकार गति करते हुए इलेक्ट्रन ही "चुम्बक क्षेत्र" (Magnetic field) पैदा करते हैं। विद्युत् या बिजली एवं चुम्बक का एक अटूट नाता होता है। इसीलिये इनके उत्पादक "क्वान्टम फील्ड" को हम "विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र" (Electro-magnetic field) कहते हैं। रेडियो तरंगों की तरह ही प्रकाश भी इलेक्ट्रनों की गति से ही पैदा होता है।

इस पुस्तक को लिखने का हमारा केवल यही उद्देश्य है कि हम यह बतावें कि मनुष्य अपने सहज स्वाभाविक रूप में हमेशा अमर बना रहता है। जन्म से ही वह मृत्युञ्जय है और सर्व-व्यापी है। मृत्यु को जीत कर अमर होजाने के लिये वह भावुक जो कुछ भी कुचकर साधन अपनाता आ रहा है और उन साधनों को अपनाने पर भी वह जो हमेशा मृत्यु के हाथों मुँह की खाता चला आ रहा है, यह सब उसके अपने स्वरूप को न जानने के कारण ही है।

मनुष्य भी अज्ञान-वश एक कस्तूरी-मृग (musk Deer) की तरह ही आचरण करता है। मृग की नाभि में ही कस्तूरी भरी रहती है। उसकी सुगन्ध पाकर वह मृग बेचैन और पागल-सा होकर इधर उधर उस सुगन्ध के स्रोत को खोज करने के वृथा प्रयास में दौड़धूप करता रहता है। वह नहीं जानता कि उस सुगन्ध को देने वाली कस्तूरी तो उसकी अपनी नाभि में ही मौजूद है।

ठीक इसी प्रकार मनुष्य भी नहीं जानता है कि उसके अपने शरीर में ही "अमरत्व" का स्रोत विद्यमान है। यह स्रोत है इलैक्ट्रन प्रकाश-तरंगें– उन इलैक्ट्रन की प्रकाश-तरंगें जिनसे उसका भौतिक शरीर निर्मित हुआ है। इस बात को न जानकर ही वह अमरत्व की खोज में बाह्य साधनों का वृथा आश्रय लिया करता है।

विज्ञान ने आज विश्व की अनेक दुर्बोध और जटिल पहेलियों की प्रयोगात्मक उधेड़ बुन कर उनके समुचित तर्कपूर्ण, बुद्धि ग्राह्य और यथार्थ समाधान प्रस्तुत कर दिये हैं। विज्ञान विश्व-सत्य का एक रूप है। वास्तव में विज्ञान और सत्य दोनों पर्यायवाची हैं;– विज्ञान को ही सत्य कह सकते हैं और सत्य को विज्ञान। विज्ञान की

लम्बाइयों की "छोटी लाल तरंगें या किरणें" (Infra-red rays) होती हैं। इन छोटी लाल तरंगों से और नीचे चलकर इनसे भी दसवें हिस्से छोटी लम्बाइयों की "रडार तरंगें" (Radar waves) होती हैं। रडार तरंगों से दसवें हिस्से छोटी लम्बाइयों की "लघु रेडियो तरंगें" होती हैं और उनसे भी दसवें हिस्से छोटी लम्बाइयों की "साधारण रेडियो तरंगें" (Ordinary radio waves) होती हैं जिनके द्वारा हम रात दिन अपने रेडियो 'सेटों' पर दुनियां भर की स्टेशनों से संगीत और खबरें सुनते रहते हैं। इन साधारण रेडियो तरंगों से भी दसवें हिस्से छोटे "लम्बाइ होते हैं जो इलेक्ट्रनों की दौड़-धूप के कारण रात-दिन हमारे शरीरों में उत्पन्न होते रहते हैं। स्पष्ट ही इलेक्ट्रन-तरंगें साधारण-प्रकाश, केवल जिसे ही हमारी आंखें देख सकती हैं के लम्बाइयों से एक लाख हिस्से छोटी लम्बाइयाँ उत्पन्न करती हैं – उसे भला तब हम कैसे अपनी आंखों से देख सकते हैं। यह अदृश्य प्रकाश-तरंगें हैं। हमारे शरीर के कण कण से यह निकलती रहती हैं परन्तु उनका अनुभव हम केवल ताप के रूप में ही कर सकते हैं। इनके कारण ही हमारे शरीर गर्म रहते हैं।

इनको प्रत्यक्ष देख पाने के लिये हमें "साधारण प्रकाश तरंगों" (हमारी आंखें जिनको देखने की अभ्यस्त हैं) का सहारा लेने की जरूरत पड़ जाती है। साधारण प्रकाश-तरंगें हमारे शरीर की इन इलेक्ट्रन-तरंगों पर पड़कर उन्हें परिवर्तित कर देती हैं और तब हम एक दूसरे के शरीर को देख सकते हैं।

पहिले हमें यह जान लेना जरूरी है कि हम देखते कैसे हैं?

जिस प्रकार कान में ध्वनि तरंगें कान के अन्दर एक झिल्ली से टकराकर उस झिल्ली को बजाती हैं और तब वह झिल्ली कुछ महीन रोमों में "गुद गुदी" या "सरसराहट" करती है और इस गुद गुदी या सरसराहट को हमारा मस्तिष्क ध्वनि के संदेशों में समझ लेता है ठीक उसी प्रकार आंखों में भी प्रकाश-तरंगें छड़ों और शंकुओं की शक्ल के बहुत छोटे स्नायु-सिरों में "गुदगुदी" या "सरसराहट" करती हैं और इस प्रकार उत्पन्न स्नायु-आवेगों को मस्तिष्क "दृष्टि" समझता है।

आंख के गोले के पिछले हिस्से पर, जिसे दृष्टिपटल या 'रेटीना' (Retina) कहते हैं लाखों छोटे छोटे छड़ या शंकु टिके रहते हैं जो प्रकाश के प्रति संवेदक होते हैं। इस "रेटीना" में चार भांति के "दृष्टि-सम्बन्धी पिगमेंट्स" (Visual pigments) होते हैं जो (१) ल्यूटीन (Lutein) या जैन्थोफील (Xantophyll) (२) हीमोग्लोबीन (Haemoglobic), (३) ऑक्सी हीमोग्लोबीन (Oxy haemoglobin) और (४) मीथिमोग्लोबीन (Methy moglobin) हैं। पिछले तीन "पिगमेंट्स" वही हैं जो मनुष्य के रक्त में रहते हैं। शरीर की रक्त-वाहिनी नलिकाएं "रेटीना" को प्रचुर परिमाण में रक्त पहुंचाकर उसे पुष्ट करती रहती हैं।

"रेटीना" के लाखों छोटे छोटे छड़ या शंकु मिलकर मस्तिष्क को उस देखी जाने वाली वस्तु के आकार, रूप और रंग के बारे में बताते हैं, परन्तु वह तब ही ऐसा कर सकते हैं जब उन पर उस वस्तु का स्पष्ट सीधा प्रतिबिम्ब पड़े। आंख का लेन्स सीधा प्रतिबिम्ब बनाने का काम करता है।

लेन्स एक पारदर्शक और लचीली झिल्ली से बना होता है जो एक द्रव पदार्थ से भरी होती है। यह लेन्स एक गोल मांस पेशी से लटकता रहता है जो लेन्स का इस तरह "फोकस" (Focus) या संयम करती रहती है कि दृष्टपटल या रैटीना पर सीधा प्रतिबिम्ब पड़े।

दूरबीन तथा माइक्रोस्कोप में फोकस करने के लिये लेन्स को तबतक आगे पीछे हटाते रहते हैं जब तक प्रतिबिम्ब इतना सीधा न होजाय कि उसे आसानी से देखा जा सके। 'फोकस' करने का व्यावहारिक अनुभव आप एक गोल "मैग्नीफाइङ्ग ग्लास" से थोड़ा बहुत कर सकते हैं। कमरे में टेबुल लैम्प जलाकर बीच में खड़े हो जाइये और मैग्नीफाइङ्ग ग्लास को दीवार से परे कुछ फुट दूर पर पकड़ रखिये। मैग्नीफाइङ्ग ग्लास को धीरे धीरे दीवार की ओर ले चलिये। अन्त में दीवार पर टेबुल लैम्प का प्रतिबिम्ब फोकस में आजायगा। आप देखेंगे कि प्रतिबिम्ब उल्टा है— एक ही लैन्स से बना हुआ प्रतिबिम्ब सदा उल्टा होगा।

आँख की लेन्स वाली मांस-पेशी लगभग इसी तरह फोकस करती है पर इसमें लेन्स को मोटा या पतला करके फोकस किया जाता है। जब लैन्स मोटा होता है तब उसमें से गुजरने वाली प्रकाश-रश्मियें अधिक मुड़ जाती हैं जब लैन्स पतला होता है, तब वह कम मुड़ती हैं। यह बात महत्वपूर्ण है; क्योंकि इस प्रकार लैन्स अपने आपको दूर की और पास की वस्तुओं को देखने के लिये अनुकूल बना लेता है। उदाहरण के लिये; मान लीजिये कि आप प्रकाश का एक दूरस्थ बिन्दु देख रहे हैं। ऐसी अवस्था के लिये लैन्स की मांस-पेशी शिथिल पड़ जायगी और लैन्स को पतला हो

जाने देगी। जब लेन्स पतले रूप में आ जाता है तब यह प्रकाश-तरंगों को इतना ही मोड़ता है कि आपके रेटीना पर एक तीखा बिन्दु बन जावे। पर यदि आप किसी पास के प्रकाश-बिन्दु को देख रहे हैं तो पतला लेन्स प्रकाश तरंगों को काफी नहीं मोड़ेगा और इससे बिन्दु "फोकस" के बाहर रहेगा। इससे बचने के लिये लेन्स की मांस पेशी सिकुड़ती है और इस तरह लेन्स अधिक मोटा होजाता है। तब मोटा लेन्स उन तरंगों को अधिक मोड़ता है और बिन्दु आपकी आंख की रेटीना पर फोकस में आ जाता है।

रेटीना पर प्रतिबिम्ब के फोकस में आ जाने के बाद कुछ दण्ड और शंकु प्रकाशित हो जावेंगे और कुछ अप्रकाशित रहेंगे। जब आप प्रकाश के बिन्दु को देखते हैं तब अपेक्षाकृत थोड़े दण्ड और शंकु अधिक प्रकाशित होते हैं और उनके चारों ओर के दण्ड और शंकु प्रकाशहीन रहते हैं। प्रकाशित दण्ड और शंकु उद्दीपित होकर संवेग या स्नायु-आवेग मस्तिष्क को भेजते हैं। जो प्रकाशित हैं वह मस्तिष्क को यह तथ्य सूचित करते हैं और मस्तिष्क तब प्रकाशित दण्डों और शंकुओं से प्राप्त सूचना को प्रकाश के एक छोटे वृत्त या घेरे के रूप में समझता है। दण्ड या शंकु पर पड़ने वाला प्रकाश चाहे तीव्र हो या मन्दा हर हालत में भेजे जाने वाले स्नायु-आवेगों की तीव्रता एक समान होगी। एक बात तो जरूर होगी कि हल्का प्रकाश होने पर दण्ड या शंकु अपेक्षाकृत कम बार स्नायु आवेग भेजेंगे। प्रकाश जितना अधिक तीव्र होगा उतनी ही अधिक बार स्नायु-आवेग पैदा होंगे।

दृष्टि-पोषक स्नायु तब उन स्नायु-आवेगों को मस्तिष्क के

दृष्टि-केन्द्र में पहुंचा देंगे। यह दृष्टि-केन्द्र कुछ विशेष मस्तिष्क कोशिकाओं (Cells) का एक समूह है जो इन स्नायु आवेगों द्वारा लाये गये संकेतों का अर्थ समझते हैं और उन्हें मिलाकर ए "चित्र" के रूप में पेश करती हैं।

इन मस्तिष्क कोशिकाओं की तुलना आप किसी अखबार में छपे हुए चित्र को बनाने वाले बिन्दुओं से कर सकते हैं। यदि आप उस चित्र को गौर से देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि वह चित्र विभिन्न आकारों के बिन्दुओं से बना हुआ है। जहाँ बहुत से बड़े ब बिन्दु होंगे वहाँ भाग काला होगा और जहाँ वह बिन्दु छोटे होंगे वह सफेद होगा। दूर से देखने पर आपको वह बिन्दु आपस में मिले हुए दिख पड़ेंगे। आपको तब भिन्न भिन्न 'बिन्दी डोटों' से बना हुआ पूरा चित्र ही दिख पड़ेगा। ठीक इसी प्रकार दृष्टि-केन्द्र की मस्तिष्क-कोशिकाएं भी भिन्न भिन्न मात्राओं में उत्तेजित होकर बड़े या छोटे बिन्दु" बनाती हैं। दृष्टि-केन्द्र तब उन बिन्दुओं को मिलाकर एक पूर्ण प्रतिबिम्ब बना देता है जिसे हम अपनी आंखों से देखकर यह जान लेते हैं कि अमुक आकार, रंग और रूप की अमुक वस्तु को हम देख रहे हैं।

हमारे शरीर के प्रत्येक कण में हजारों इलेक्ट्रान रात दिन अपने परमाणुओं की एक कक्षा से दूसरी कक्षाओं पर कूदते हुए अत्यन्त सूक्ष्म प्रकाश-तरंगों को उत्पन्न करते रहते हैं। यह प्रकाश तरंगें अत्यन्त छोटी लम्बाइयों की होने के कारण अदृश्य बनी रहती हैं। हमारी आंखें जिन प्रकाश-तरंगों को देखने की अभ्यस्त हैं उनकी लम्बाइयां ०.००००६६ सेन्टीमीटर (यह लाल रंग के प्रकाश की

तरंग-लम्बाई है) से लेकर ०.००००४२ सेण्टीमीटर (बैंगनी रंग के प्रकाश की तरंग-लम्बाई) तक ही होती हैं। हमारी आँखें केवल इन तरंग-लम्बाइयों के प्रकाश को ही देख सकती हैं। इसका कारण यही है कि सूर्य के जिस प्रकाश के सतत प्रभाव में हमारी आँखों की दृष्टि-शक्ति का विकास हुआ है वह इन दोनों सेण्टीमीटरों की तरंग-लम्बाइयों के क्रमशः लाल और बैंगनी रंग के एवं मध्यवर्ती तरंग-लम्बाइयों के नारंगी पीला, हरा, नीला और गहरा नीला (Indigo) रंगों के प्रकाश-क्षेत्र में ही अत्यधिक प्रखर है। इन तरंग-लम्बाइयों से छोटी और बड़ी लम्बाई की तरंगें सूर्य के प्रकाश में प्रखर नहीं होने के कारण हमारी आँखों से ओझल ही रहती हैं।

यह बात तो हम पहिले ही स्पष्ट कर आये हैं कि इलैक्ट्रन की यह अत्यन्त सूक्ष्म और इस कारण अगम्य सी लगने वाली प्रकाश तरंगें ही मिलकर किसी एक ही दिशा में बहती हुई जब अपने मार्ग में रुकावट पाती हैं तब वह सब एक ही स्थान पर आ जाकर इकट्ठी हो जाती हैं और एक सामूहिक रूप में प्रकाश-पुञ्ज बनकर चम उठती हैं। इस प्रक्रिया को हम हमेशा हमारे घरों में जलते हुए बिजली के लट्टुओं के रूप में देखते रहते हैं। शरीर के इलैक्ट्रनों से उत्पन्न तरंगों को अपने अपने घरों से अलग अलग चलकर बाहर "क्षेत्र" (Space) में निकलते रहने का अवकाश मिलता रहता है। शरीर के बाहर की ओर 'क्षेत्र' में चारों ओर निकल कर बहने के लिये वहाँ खुली छूट मिलती है। यदि ऐसा न होता और यदि शरीर के सभी इलैक्ट्रनों से उत्पन्न होने वाली प्रकाश-तरंगों को एक ही जगह पर लाकर इकट्ठा किया जा सकता तो हमारे शरीर

दृष्टि-केन्द्र में पहुंचा देते। यह दृष्टि-केन्द्र कुछ विशेष मस्तिष्क-कोशिकाओं (Cells) का एक समूह है जो इन स्नायु प्रावेगों के द्वारा लाये गये संकेतों का अर्थ लगाती हैं और उन्हें मिलाकर एक "चित्र" के रूप में पेश करती हैं।

इन मस्तिष्क-कोशिकाओं की तुलना आप किसी अखबार में छपे हुए चित्र को बनाने वाले बिन्दुओं से कर सकते हैं। यदि आप उस चित्र को गौर से देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि वह चित्र विभिन्न आकारों के बिन्दुओं से बना हुआ है। जहां बहुत से बड़े बड़े बिन्दु होंगे वहां क्षेत्र काला होगा और जहां वह बिन्दु छोटे होंगे वहां सफेद होगा। दूर से देखने पर आपको वह बिन्दु आपस में मिले हुए दिख पड़ेंगे। आपको तब भिन्न भिन्न "सलेटी टोनों" से बना हुआ पूरा चित्र ही दिख पड़ेगा। ठीक इसी प्रकार दृष्टि-केन्द्र की मस्तिष्क-कोशिकाएं भी भिन्न भिन्न मात्राओं में उद्दीपित होकर बड़े या छोटे बिन्दु" बनाती हैं। दृष्टि-केन्द्र तब उन बिन्दुओं को मिलाकर एक पूर्ण प्रतिबिम्ब बना देता है जिसे हम अपनी आंखों से देखकर यह जान लेते हैं कि अमुक आकार, रूप और रङ्ग की अमुक वस्तु को हम देख रहे हैं।

हमारे शरीर के प्रत्येक कण में हजारों इलेक्ट्रन रात दिन अपने परमाणुओं की एक कक्षा से दूसरी कक्षाओं पर कूदते हुए अत्यन्त सूक्ष्म प्रकाश-तरंगों को उत्पन्न करते रहते हैं। यह प्रकाश तरंगें अत्यन्त छोटी लम्बाइयों की होने के कारण अदृश्य बनी रहती हैं। हमारी आंखें जिन प्रकाश-तरंगों को देखने की अभ्यस्त हैं उनकी लम्बाइयां ०,००००६६ सेन्टीमीटर (यह लाल रंग के प्रकाश की

तरंग-लम्बाई है) से लेकर ०.००००४२ सेन्टीमीटर (बैंगनी रंग के प्रकाश की तरंग-लम्बाई) तक ही होती है। हमारी आँखें केवल इन तरंग लम्बाइयों के प्रकाश को ही देख सकती हैं। इसका कारण यही है कि सूर्य के जिस प्रकाश के इस क्रम प्रभाव में हमारी आँखों की दृष्टि-शक्ति का विकास हुआ है वह इन दोनों सेन्टीमीटरों की तरंग-लम्बाइयों के क्रमशः लाल और बैंगनी रंग के पूर्व मध्यवर्ती तरंग-लम्बाइयों के नारंगी पीला, हरा, नीला और गहरा नीला (Indigo) रंगों के प्रकाश-क्षेत्र में ही वास्तविक प्रखर है। इन तरंग-लम्बाइयों से छोटी और बड़ी लम्बाई की तरंगें सूर्य के प्रकाश में प्रखर नहीं होने के कारण हमारी आँखों से ओझल ही रहती हैं।

यह बात तो हम पहिले ही स्पष्ट कर आये हैं कि इलेक्ट्रन की यह अत्यन्त सूक्ष्म और इस कारण अगम्य सी लगने वाली प्रकाश तरंगें ही मिलकर किसी एक ही दिशा में बहती हुई जब अपने मार्ग में रुकावट पाती हैं तब वह सब एक ही स्थान पर आ आकर इकट्ठी हो जाती हैं और एक सामूहिक रूप में प्रकाश-पुञ्ज बनकर जल उठती हैं। इस प्रक्रिया को हम हमेशा हमारे घरों में जलते हुए बिजली के लट्टुओं के रूप में देखते रहते हैं। शरीर के इलेक्ट्रनों से उत्पन्न तरंगों को अपने अपने कक्षों से अलग अलग चलकर बाहर 'देश' (Space) में निकलते रहने का अवकाश मिलता रहता है। शरीर के बाहर भी और 'देश' में चारों ओर निकल कर बहने के लिये उन्हें खुली छूट मिलती है। यदि ऐसा न होता और यदि शरीर के सभी इलेक्ट्रनों से उत्पन्न होने वाली प्रकाश-तरंगों को एक ही जगह पर लाकर इकट्ठा किया जा सकता तो हमारे शरीर

का यह स्थान जल-जल कर २५ वाट (Watt) के एक बल्ब की तरह ही जलता रहता और प्रखर प्रकाश देता रहता। सच ही; हमारे शरीर में उत्पन्न होने वाली यह प्रकाश-तरंगें या विद्युत्-शक्ति इतनी तेज होती है कि यह, जैसा हम अभी कह आये हैं, न केवल २५ वाट के एक बल्ब को ही जलाते अपितु पानी से भरी हुई चार बड़ी बड़ी केतलियों के पानी को भी उबाल दें अथवा एक स्टीम-लोकल एञ्जिन को चलाकर हमारे घर के एक बड़े कमरे में चारों ओर घुमायें।

सच तो यह है कि प्रत्येक जीवधारी पेड़, पौधे और जन्तु–अपना प्रकाश उत्पन्न करते हैं। यह प्रकाश शीत होता है। भोजन से प्राप्त हुई ऊर्जा (Energy) जीवों के श्वास चलने फिरने बोलने, बैठने अथवा दूसरे काम करने में ही खर्च होती रहती है। इस ऊर्जा का कुछ भाग तो ऊष्मा (Heat) और कुछ रासायनिक शक्ति में परिवर्तित हो जाता है; कुछ अन्य शारीरिक क्रियाओं में काम आता है पर जुगनू और अन्य जीवों में यह भोजन-जनित शक्ति प्रकाश अथवा विद्युत्-शक्ति के रूप में निकलती है।

जुगनू तो प्रायः सबने देखे ही होंगे। इसके पेट के पिछले खण्डों की निचली सतह से प्रकाश निकलता है। नर की अपेक्षा मादा में यह अंग बड़ा होता है। वेस्ट इण्डीज तथा दक्षिणी अमेरिका में एक प्रकार के कोरिन जन्तु के वक्ष में काफी तेज प्रकाशमय अंग होते हैं। इनका प्रकाश सबसे अधिक चमकदार तारे से भी तेज होता है।

ब्राज़ील के आसपास मिलने वाली ईल (Eel) मछली की पूँछ के ऊतकों (Tissues) से सैकड़ों वाट विद्युतीय ऊर्जा

(Energy) पैदा होती है। प्राचीन-काल में गठिया सिर दर्द या इसी प्रकार के रोगों का इलाज करने के लिये तत्कालीन चिकित्सक रोगी को किसी ऐसी मछली के शरीर पर नंगे पैरों खड़ा कर देते थे जो उसके शरीर को अपने शरीर से उत्पादित बिजली से कुछ समय के लिये सुन्न कर देती थी।

वह मैं मानसी जितनी ईल मछली की पेशियों के संकुचन से पैदा हुई बिजली से एक साथ बारह बल्ब जलाये जा सकते हैं।

उष्ण-सागरों में अधिकतर पाई जाने वाली टारपीडो (Torpedo) अथवा इलेक्ट्रिक रे फिश (Electric rayfish) के सिर और बढ़े हुए पैक्टोरल फिन्स (Pectoral fins) के बीच, शरीर के दोनों ओर एक एक बिजली पैदा करने वाला अंग होते हैं। टारपीडो में यह सारे विद्युतीय अंग उन तन्तुओं से बने हैं जो पहले इसके गिल्स (Gills) को खोलने और बन्द करने का काम करते थे। प्रत्येक अंग बड़ा हुआ, चपटा तथा अनेक षट्-कोण खानों का बना होता है। ये खाने रेशेदार ऊतक (Fibrous tissues) की दीवारों से एक दूसरे से अलग किये हुए होते हैं। हर एक खाने में साफ शहद की तरह का एक पदार्थ भरा होता है जो विद्युतीय द्रव्य का काम देता है। इन खानों में चपटे इलेक्ट्रिक प्लेट होते हैं जिनके एक ओर तन्तुओं का एक गुच्छा होता है। नाड़ी के छोर वाले इलेक्ट्रिक प्लेट ऋण (Negative) तथा दूसरे धन (Positive) होते हैं। विद्युत्-धारा ऊपर से नीचे की ओर चलती है। रेत में आधी धँसी हुई एक टारपीडो मछली २०-वाल्ट तक का झटका मार सकती है।

अमरीकी वैज्ञानिक प्रोफेसर बीब (Beebe) ने सन् १९३० ई० में आधा मील गहराई तक और स्विस वैज्ञानिक पिकर्ड (Piccard) और अमरीकी डॉन वाल्श (Don walsh) ने ७।। मील गहराई तक समुद्र में उतर कर सर्पीले कृ पल, लैम्पर्न फिश, कोलसेस्थिमन फिश इत्यादि अनेक प्रकाशमय मछलियाँ देखी थीं। समुद्र-तल के घनघोर अन्धकार में विचरने के लिये इन जीव-जन्तुओं ने अपने प्रकाशमय अंगों को विकसित किया था।

वनस्पति-संसार में कुछ बैक्टीरिया तथा फफूंदाई प्रकाश उत्पन्न करते हैं। कुकुरमुत्ते या मशरूम (Mushrooms) हरा नीला या नारंगी रंग का प्रकाश उत्पन्न करते हैं।

हम मनुष्यों के शरीरों में भी पेशियों के संकोच के समय विद्युत्-सम्बन्धी परिवर्तन होता है। इस काल में शक्ति का प्रादुर्भाव न केवल ताप के रूप में ही होता है अपितु सूक्ष्म परिमाण में विद्युत् भी प्रकट होती है। यह वैद्युतिक परिवर्तन पेशी-संकोच के अव्यक्त काल में प्रारम्भ होते हैं और संकोच-काल के समाप्त होने के पूर्व ही समाप्त हो जाते हैं। डु बोई रैमोण्ड (Du Bois Reymond) ने पेशी की विश्रामावस्था की विद्युत्-धारा (Current of rest) का अपना एक सिद्धान्त पेश किया है। दूसरा एक सिद्धान्त हरमैन का सिद्धान्त 'Hermann's theory) है। दोनों ही सिद्धान्तों में अपने अलग अलग आधारों पर मानव शरीर में इस विद्युत्-धारा की उत्पत्ति का समर्थन किया है। इसी प्रकार "क्रिया-जन्य विद्युत्-धारा (Current of action) का सिद्धान्त है। प्रमुख जीव-शास्त्री सर जूलियन हक्सले (Sir Julion Huxley) ने ३१ जुलाई सन्

१९६ में लिखे हुए अपने एक लेख (Science and God) में एक जगह लिखा है (All physiological activity is accompanied by minute electrical activities, which in a few fish have been intensified and turned to biological use in specially evolved electrical organs) अर्थात् सम्पूर्ण शारीरिक चेष्टाओं के साथ सूक्ष्म वैद्युतिक हलचलें संयुक्त रहती हैं जिनको कुछ मछलियों ने, अपने विद्युत् उत्पादक अंगों को विशेष विकसित कर, शारीरिक व्यवहार में उपयोग कर लिया है।

जो भी हो यह तो निश्चित बात है कि हमारे शरीर का प्रत्येक कण अपने चारों ओर सभी दिशाओं में, ऊपर और नीचे की ओर भी अपनी प्रकाश तरंगों की एक अटूट धारा बहाता रहता है। यह प्रकाश-तरंगें चारों ओर बहती हुई वहाँ खड़े दर्शकों की आँखों के रेटीना से टकराती हैं और वहाँ एक "फोकस" में बँधकर उन दर्शकों को उस देखे गये व्यक्ति-शरीर का स्पष्ट और हू-बहू भान कराती हैं।

मान लीजिये आप एक चौरस मैदान में खड़े हैं। आपके ठीक सामने और लगभग दस फुट की दूरी पर एक दूसरा व्यक्ति खड़ा आपको देख रहा है। उस समय आपके शरीर की चोटी से लेकर एड़ी तक के सभी अंगों के प्रत्येक कणों से निकलने वाली प्रकाश तरंगें उस सामने खड़े हुए व्यक्ति की आँखों की रेटीना पर पड़ती हैं। रेटीना तब उन तरंगों को पकड़ कर उन्हें आँख के भीतर एक ओर को मोड़ देता है। इस प्रकार वह सब तरंगें एक ही बिन्दु पर

जा जुटती हैं। इस बिन्दु को नाभिक (Focus) कहते हैं। नाभिक पर आकर वह सब तरंगें अलग-अलग अपने मौलिक स्रोतों (आपके शरीर के कणों) के अनुरूप ठीक वैसे ही प्रतिबिम्ब बिन्दु बना देती हैं। वह सब प्रतिबिम्ब-बिन्दु ही एक साथ मिल जुलकर आपके शरीर का एक सम्पूर्ण आकार बना देते हैं। आपको देखने वाले उस दूसरे व्यक्ति का दृष्टि-केन्द्र तब उसको यह भान कराता है कि वह आपको देख रहा है। प्रकाश-तरंगों को यों भीतर की ओर मोड़कर उनका एक जगह फोकस बना देने की क्रिया को 'वर्तन" (Refraction) कहते हैं।

मान लीजिये कि वह व्यक्ति अब आपकी ओर थोड़ा चलकर आपके पास आ गया है। अब वह आपकी ओर मुंह किये हुए ही आपसे केवल एक फुट की दूरी पर खड़ा है। उस समय वह केवल आपके मुंह या कन्धों के ऊपरी भाग को ही देख सकेगा' क्योंकि तब आपके कन्धों से नीचे के सभी अंगों से निकलने वाली प्रकाश-तरंगें उस व्यक्ति की आँखों के नीचे नीचे से ही निकलती रहेंगी और आँखों की रेटीना पर न आ पावेंगी। आपके उन सब अंगों को वह नहीं देख पावेगा। अपनी आँखों को नीचे की ओर झुकाकर ही वह उनको देख सकेगा क्योंकि तब उन अंगों से निकलकर ऊपर की ओर बढ़ती हुई तरंगों को उसकी आँख की रेटीना पकड़ सकेगी और तब ही नीचे के उन भागों के अनुरूप आकृति बिन्दु वहाँ फोकस में आ सकेंगे।

बात को आगे बढ़ाते हुए अब आप यह भी मान लीजिये कि आपके चारों ओर उस मैदान में सैकड़ों व्यक्ति खड़े हुए आपकी ओर

देख रहे हैं। वह सब इस प्रकार खड़े हैं कि कुछ व्यक्ति तो आपसे दस फुट दूर हैं कुछ १०० फुट दूर और कुछ २०० फुट दूर हैं। निश्चय ही वह सब आपको देखेंगे बशर्ते कि आपके और उनके बीच कोई रुकावट न खड़ी हो। आपके शरीर के प्रत्येक कण से लगातार निकल निकल कर इलेक्ट्रानों की प्रकाश-तरंगें आगे और आगे की ओर निरन्तर बढ़ती हुई उन सब की आँखों की रेटीनाओं पर पहुँचेगी। वह सब आपको देखेंगे तो अवश्य परन्तु उनके यों देखने के काल-भागों में फर्क होगा। यह फर्क इतना सूक्ष्म और अग्राह्य होगा कि आप उसे पकड़ ही न पायेंगे।

यह तो हम जान ही गये हैं कि प्रकाश की गति प्रति सेकण्ड १८६ ०० मील है। १० फुट, १०० फुट और २०० फुट की विभिन्न दूरियों को पारकर उन दूरियों पर खड़े सभी व्यक्तियों की आँखों तक पहुँचने में उन प्रकाश-तरंगों को अपेक्षाकृत कुछ कम अधिक काल तो निश्चय ही लगेगा परन्तु अन्तर वह इतने सूक्ष्म होंगे कि हम उन्हें नहीं पकड़ पायेंगे। एक सेकण्ड में १८६ ० मील चलने वाली प्रकाश-तरंगों को १० फुट १०० फुट और २०० फुट की दूरियों को पार करने में क्रमशः एक सेकण्ड के १८८३६८०० १८८३६८०० और [illegible] के बराबर का समय लगेंगे।

आपसे दस फुट दूर पर खड़े व्यक्ति आपको और आपकी आँखों को उठाने के तुरन्त १८८३६८०० सेकण्ड के बाद आपको देखने लगेंगे परन्तु तब तक १०० फुट दूर पर खड़े व्यक्ति आपको नहीं देख पायेंगे जब तक ही उन्होंने भी दस फुट दूर पर खड़े उन व्यक्तियों के साथ,— बिल्कुल एक साथ— ही आपके ऊपर अपनी आँखें उठाईं

हों। कुछ अत्यन्त ही सूक्ष्म काल और बीतने पर [illegible] सेकण्ड के बाद ही आपको वह १०० फुट दूर के व्यक्ति देख सकेंगे। आपके शरीर का प्रकाश उन तक तब ही पहुँच पायेगा। २०० फुट दूर पर खड़े व्यक्तियों के लिये तो आप तब भी अदृश्य ही बने रहेंगे। कुछ और अधिक काल बीतने पर [illegible] सेकण्ड के बाद वह भी आपको देखने लगेंगे।

दृष्टि काल में इतने बड़े फर्क होने पर भी सभी दूरियों पर खड़े व्यक्ति यही समझेंगे कि वह सब आपको एक ही समय में और आपके एक ही विशुद्ध रूप को देख रहे हैं। परन्तु तथ्य तो यह होगा कि जब तक उन तीनों दूरियों पर खड़े व्यक्ति आपको देखते रहेंगे उनके दृष्टि काल का यह फर्क निरन्तर बना रहेगा। वह आपके तीन भिन्न कालीन रूप देखेंगे। यदि [illegible] सेकण्ड के बाद और [illegible] सेकण्ड के पहिले आपको कुछ हो जाय और आप अचानक मृत हो जावें तो भी उस काल-भाग की अवधि में आपके शरीर के कणों से जितनी भी कुछ प्रकाश-तरंगें बाहर की ओर फेंक दी हैं वह तो निर्बाध आगे की ओर बहती चली जावेंगी। अपनी अपनी काल-अवधि में एक सेकण्ड के उतने भागों के फर्क पर वह सब व्यक्ति आपको तब भी देखेंगे जबकि हकीकत यह होगी कि उस समय आप वास्तव में मृत हो चुके होंगे। इस प्रकार आपके और देखने वाले के बीच की दूरियाँ ज्यों ज्यों बढ़ती जावेंगी त्यों त्यों प्रकाश-तरंगों को वह दूरियाँ पार करने में अधिक और अधिक समय लगता चला जावेगा। यदि पृथ्वी बिल्कुल चौरस और सपाट होती और यदि मनुष्य सैकड़ों मीलों तक देखने की सामर्थ्य रखता तो

आपसे १००० मील दूर खड़े व्यक्ति को आपकी पहली झलक लेने में १/१८६ सेकण्ड (एक सेकण्ड का १८६ वाँ भाग) का समय लगता। इसका एक मतलब यह भी हुआ कि जब कभी वह आपको १०० मील की दूरी से देखेगा तब तब वह आपके १/१८६ सेकण्ड पहिले के रूप आकार और हाव भावों को देखेगा। विशुद्ध रूप में वर्तमान यानी तत्कालीन रूप आकार और हाव भावों को वह नहीं देख सकेगा। यदि आप अपने हाव भाव को बन्द भी करदें तो भी आपके ऐसा करने के १/१८६ सेकण्ड बाद तक वह आपको वैसे हाव भाव करते हुए ही देखेगा। आपके लिये जो बात भूत काल की हो चुकी है वह बात उस देखने वाले के लिये १/१८६ सेकण्ड तक वर्तमान काल की ही होगी।

पृथ्वी के अपेक्षाकृत छोटे दायरे की पृष्ठ-भूमि में यह बात शुद्ध स्पष्ट रूप में नहीं आ सकेगी। वैसे तो एक सेकण्ड का समय ही इतना सूक्ष्म और अल्प है और फिर उस सेकण्ड के १८६ वें भाग के समय की कल्पना करनी तो और भी अधिक दुरूह है।

पृथ्वी के बाहर अनन्त "देश" में हम से ९३०००००० मील दूर चमकते हुए सूर्य के सन्दर्भ में हम इस बात का एक स्पष्ट और सहज बोध-गम्य चित्र बना सकेंगे। सूर्य के और हमारे बीच की इस लम्बी दूरी (९३०००००० मील) को पार कर हम तक पहुँचने में सूर्य के प्रकाश को ८ मिनट और २० सेकण्ड का समय लगता है। क्योंकि हम प्रत्येक वस्तु चित्र या मनुष्य को उसके प्रकाश (चाहे वह प्रकाश स्वयं उस वस्तु चित्र या मनुष्य का अपना उत्पन्न किया हुआ हो या चाहे प्रतिबिम्बित हो) की सहायता से ही देख पाते हैं

और क्योंकि सूर्य के प्रकाश की प्रत्येक किरण या तरंग को हम तक आकर हमारी आँखों से टकराने में ८ मिनट और २० सेकण्ड का समय लगता है, इसलिये हम हमेशा ही वर्तमान काल से ८ मिनट और २० सेकण्ड पहिले के उसके रूप को देखते रहते हैं। क्षितिज पर सूर्य के उठ आने पर भी हम ८ मिनट और २ सेकण्ड तक उसे नहीं देख पायेंगे। ठीक इसी प्रकार जब शाम को सूर्य ढलकर पश्चिमी क्षितिज के नीचे चला जायेगा तो भी हम उसके यों वास्तविक रूप में अस्त हो जाने के ८ मिनट २ सेकण्ड बाद तक उसे देखते रहेंगे। सूर्य के लिये तो उसका यह अस्त हो जाना भूत काल की बात हो चुकी होगी परन्तु क्योंकि उसकी प्रकाश-किरणें अब भी हम तक पहुँच रही हैं और दो चार मिनट बाद तक पहुँचती रहेंगी इसलिये हम उसे तब भी क्षितिज पर देख रहे होंगे-हमारे लिये उसका अस्त होना भविष्य की बात होगी। हम तब भी क्षितिज की ओर उंगली उठाकर कह रहे होंगे; "देखो! वह सूर्य पश्चिम क्षितिज पर चमक रहा है।"

एक जगह जो भूत काल है वही दूसरी जगह वर्तमान काल और किसी तीसरी जगह भविष्य काल है। यह बात और भी अधिक स्पष्ट और प्रखर रूप में उभर उठती है जब हम 'देश' में सूर्य से और आगे बढ़ते हैं। हमारी अपेक्षा सूर्य से भी बहुत अधिक दूर परन्तु तारों में हमारा अपेक्षाकृत निकटतम पड़ौसी "प्रोक्ज़ीमा सैण्टौरी" (Proxima centauri) नामक तारा है। याद रखना चाहिये कि तारों के नाम हमने अपनी इच्छा पर रख छोड़े हैं; सम्भव है किसी दूसरे ग्रह के बुद्धिशील निवासी उसे किसी और

नाम से पुकारते हों। प्रोक्सीमा सेन्टौरी तारा हमसे (हमारी पृथ्वी से) ४·१४ प्रकाश-वर्ष दूर है। इसका मतलब यह हुआ कि उस तारे से चले हुए प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचने में ४·१४ वर्ष लगते हैं। प्रकाश एक वर्ष में १८०० ०८ ० ०० ० मील चलता है। इस संख्या को ४·१४ से गुना करने पर प्रोक्सीमा सेन्टौरी तारे की पृथ्वी से मीलों में दूरी निकल आयेगी। उनसे अगला तारा अल्फा सैन्टौरी (Alpha cen ouri) हमसे ४·३ प्रकाश-वर्ष दूर है।

बात बिल्कुल वही होगी यदि हम इसको पलटकर यों कहें कि प्रोक्सीमा सैन्टौरी और अल्फा सेन्टौरी तारों से हमारी पृथ्वी क्रमशः ४·१४ और ४·३ प्रकाश वर्ष दूर है। हमारी पृथ्वी पर स्थित किसी भी एक वस्तु या एक मनुष्य के द्वारा प्रसारित प्रकाश को प्रोक्सीमा सेन्टौरी तक पहुँचने में ४·१४ प्रकाश-वर्ष लगेंगे। यदि आज हमारे घर में कोई बच्चा पैदा हो और हमारा ही कोई कुटुम्बी वहाँ प्रोक्सीमा सेन्टौरी तारे के किसी ग्रह पर बैठकर एक अत्यन्त शक्तिशाली दूरबीन से हमारे घर को देखे तो उसे उस बच्चे के जन्म और उसका अस्तित्व के कोई लक्षण भी दिखाई पड़ेंगे। आज से ठीक ४·१४ वर्ष पहिले हमारे घर में जो घटनायें या चहल-पहल हो रही थी केवल उनको ही वहाँ बैठकर आज देखेगा। आज के जन्मे हुए बच्चे के शरीर की प्रकाश-तरंगें आज से 'ईथर' में बहना और चलना प्रारम्भ करेंगी और ४·१४ वर्ष बाद हमारे उस कुटुम्बी को यदि वह तब हमारे घर को और देख रहा होगा, उस बच्चे के जन्म की पहिली झलक देंगी। हमारे लिये जो बच्चा तब तक बढ़ कर उम्र में ४ वर्ष और

पौने दो महीनों का हो जायगा वह हमारे उस कुटुम्बी के लिये तुरन्त जन्मा हुआ होगा। यहां तो हम उस बच्चे की चौथी वर्ष गाँठ मना चुके होंगे और वहां हमारा कुटुम्बी आज उस बच्चे के जन्म की खुशी में अपने इष्ट मित्रों को सह भोज दे रहा होगा।

ठीक इसी तरह जब एक आदमी यहां पृथ्वी पर आज के दिन मर चुका होगा प्रोक्जीमा सेन्टौरी के वासी अपने एक कुटुम्बी के लिये वह न केवल आज अपितु आज से लेकर चार वर्ष और पौने दो महीनों तक जीवित ही रहेगा। मान लीजिए, उस आदमी को यहां मरे हुए दो वर्ष बीत चुके हैं और इस कारण हम उसे भुला बैठे हैं; परन्तु प्रोक्जीमा सैन्टौरी निवासी उसका कुटुम्बी तब भी अपनी दूरबीन में उसकी शारीरिक प्रकाश तरंगों को पकड़ रहा होगा और उसे चलते फिरते खाते पीते और सोते उठते देख रहा होगा। उसके लिये तो वह तब मरेगा जब हमारे यहां मरे हुए उसे ४ वर्ष और पौने दो महीनों से कुछ सेकण्ड मिनट या घण्टे और अधिक बीत जायेंगे। उसका शरीर यहां पृथ्वी पर उसकी मृत्यु के बाद या तो जला दिया गया होगा या दफना दिया गया होगा और इस कारण उसके शरीर से निकलने वाली अन्तिम प्रकाश तरंगें भी निकल कर 'पैन' में अपनी लम्बी यात्रा पर चल चुकी होंगी।

अब हमारे चार वर्ष और पौने दो महीनों के बीत जाने पर वह आदमी प्रोक्जीमा सेन्टौरी के निवासी उसके कुटुम्बी के लिये भी मर चुका होगा। उसने तब इतने वर्षों बाद उसकी मृत्यु का मातम मनाया होगा। परन्तु पृथ्वी पर मरे हुए उस मनुष्य के शरीर से उसके पूरे जीवन काल भर निकलती रहने वाली प्रकाश-तरंगें तो

आगे 'देश' में बहती ही चली जायेंगी। अल्फा सेन्टौरी तारे पर या उसके किसी ग्रह पर निवास करने वाले उसके किसी कुटुम्बी के लिये वह तब भी जीवित ही होगा। उसकी दूरबीन पर तब भी पृथ्वी पर मरे हुए उस मनुष्य के शरीर की प्रकाश-तरंगें पहुँच रही होंगी और वह उसे पृथ्वी पर जीवन की सब हरकतें करते हुए देख रहा होगा। हमारे चार वर्ष और चौथे चार महीनों से कुछ ही अधिक दिन बीतने तक वह उसे यों जीवित देखता रहेगा।

इसके बाद ज्यों ज्यों हमारी पृथ्वी और उन उन तारों और उनके ग्रहों के बीच की दूरियाँ बढ़ती जायेंगी त्यों त्यों मृत्यु और जीवन का यह अन्तर भी बढ़ता जायेगा। राज हंस ६१ (Cygni 61) तारा हमसे १०.८ प्रकाश-वर्ष दूर है। चार वर्ष और चौथे चार महीनों के बाद अल्फा सेन्टौरी तारे के निवासी के लिये भी जब हमारी पृथ्वी का वह मनुष्य मर चुका होगा, 'राजहंस ६१' के किसी निवासी के लिये वह तब भी जीवित ही होगा। उसके शरीर की वह प्रकाश-तरंगें 'राजहंस ६१' के उस निवासी की दूरबीन पर तब भी पड़ रही होंगी और वह उस पृथ्वी के मरे हुए आदमी को पृथ्वी पर ही चलते फिरते देख रहा होगा। दस वर्ष और कुछ बत्तीस या तेतीस दिनों के बाद ही 'राजहंस ६१' का निवासी यह जान पायेगा कि पृथ्वी के उस मनुष्य की मृत्यु हो चुकी है।

इसके बाद मनुष्य की प्रकाश-तरंगें 'देश' में और आगे बढ़ जाती हैं। ११० प्रकाश-वर्ष दूर पर 'हाइडस' (Hyades) नामक तारा-समूह आता है। पृथ्वी पर आज अपनी मृत्यु हो जाने पर भी उस तारा-समूह के किसी भी एक ग्रह के निवासी के लिये तो वह

मनुष्य अभी पृथ्वी पर जन्मा ही नहीं है। एक जगह के लिये तो वह अपना जीवन बिताकर मर चुका परन्तु दूसरी एक जगह वह अभी कुछ वर्षों बाद जन्म लेकर अपना जीवन जियेगा ! हमारी पृथ्वी पर जो बात ११० वर्ष पहिले बीत चुकी है वह इस ग्रह पर आज फिर से अपने पूरे विस्तार के साथ ज्यों की त्यों घटनी शुरू होती है।

चल-चित्रों के निर्माता और निर्देशक एक पूरे कथानक को अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के अभिनयों के आधार पर फोटो कमेरा द्वारा अनेक छोटे छोटे परन्तु परस्पर संयोजित चित्रों में बांध कर एक पूरा सच 'सेट' (Set) बना देते हैं। सिनेमाघरों के पर्दों पर तब उस सच या सेट को चाहे जितनी बार काम में लाकर दर्शकों को पूरा कथानक दिखला देते हैं। अभिनेता और अभिनेत्रियां अगर मर भी चुके हों तो भी पर्दे पर उनको हँसते गाते बोलते और भांति भांति की चेष्टाएं करते हुए देख कर दर्शक यही जानेगा कि यह सारा काम उसके सामने ज्यों का त्यों हो रहा है। वह मरे हुए अभिनेता और अभिनेत्रियां जीते जागते व्यक्तियों की तरह ही सारा काम करते हुए दिख पड़ते हैं। हमारा अपना व्यक्ति-गत जीवन भी जिसे हम इस पृथ्वी पर जी रहे हैं बिल्कुल इसी प्रकार हमारे शरीर के इलेक्ट्रनों द्वारा निरन्तर प्रकाश-तरंगों में बदला जाता हुआ हमारे जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त एक पूरा सच या 'सेट' बन जाता है। यह सेट" अनन्त देश" में प्रति सेकण्ड १८६००० मील की चाल से निरन्तर चलता रहता है। जहां कहीं "देश" में उसे हमारी पृथ्वी की तरह का ही कोई अनुकूल ग्रह "पर्दे" (Screen) के रूप में मिल जाता है वहीं वह हमारे जीवन के पूरे कथानक को उस पर्दे

पर पेश कर देता है। भले ही हम यहाँ मर जाँय फिर भी हमारा यह जीवन-सेट या जीवन-सम्बन्ध हमें दूसरी जगह सारी घेष्टाएं करते हुए दिखलाता रहेगा।

पृथ्वी पर हमारी मृत्यु हो जाने के बीस लाख वर्ष बाद हमारा यह प्रकाश-तरंगों का सेट ऐन्ड्रोमीडा नामक नीहारिका के एक ग्रह पर हमें ठीक उसी प्रकार हंसते नाचते फिरते दिखलायेगा उससे भी आगे चलकर करोड़ों वर्षों के बाद किसी और नीहारिका के ग्रह पर हमारी जीवन-लीला का पूरा प्रदर्शन करता रहेगा। करोड़ों और अरबों वर्षों तक हमारा यह अमर जीवन-सम्बन्ध या सेट उतने प्रकाश वर्ष दूर के ग्रहों पर हमें अमर बनाये रक्खेगा। निःसन्देह हम सब अमर हैं।

प्रश्न किया जा सकता है कि क्या उन ग्रहों पर जीवित प्राणी हैं भी जो हमारे जीवन-प्रतिबिम्ब को अपनी बारी आने पर देख सकें। हैं और जरूर हैं। इस बात की पुष्टि में हम कुछ वैज्ञानिकों की रायें उद्धृत किये देते हैं। मास्को की वायलो-रशियन एकडमी ऑफ साइन्सेज के अध्यक्ष वासिली कुप्रेविच (Vassille kuprevich) ने २४ जून १९६१ के दिन अपनी एक भेंट में कहा था (On the planets we will find new and unknown forms of life The life-forms might be hundreds of millions of years more advanced than earth life forms. It is probable that living beings, possessing a great life force, will be discovered) अर्थात् ग्रहों पर हम जीवन के नये और अज्ञात प्रकार का देख

है कि उन ग्रहों के निवासियों ने तो इस 'ओर्थीकोन' से भी सैकड़ों गुना अधिक ग्राहक-शक्ति के यंत्र बना रक्खे होंगे।

हमारे वैज्ञानिकों ने दूसरा एक और भी आश्चर्यजनक यन्त्र बना लिया है जो चाहे जितनी दूर की "ऊष्मा-तरंगों (Heat waves) को पकड़कर उन्हें दृश्य चित्रों में परिवर्तित कर देता है। इसका नाम "ईवापोराग्राफ" (Evaporagraph) अथवा संक्षेप में "ईवा" (Eva) रक्खा गया है। सन् १९३० ई० में जर्मन वैज्ञानिकों ने सर्व-प्रथम इसका निर्माण किया था। ऊष्मा-तरंगों को पकड़ने की इसकी शक्ति इतनी तीव्र होती है कि यह "हिम-बिन्दु" (Freezing point) से भी नीचे के ताप-मान के अन्तर को पकड़ सकता है। यह तो आप जान गये हैं कि ताप या ताप की तरंगें (Heat waves) "इन्फ्रा-रेड रेडियेशन" (Infra redradiation) ही हैं। जिस सतरंगी प्रकाश को देखने की हमारी आँखें अभ्यस्त हैं उसके लाल छोर से नीचे की ओर जो प्रकाश-तरंगें होती हैं उन्हें "इन्फ्रा-रेड" कहते हैं। प्रत्येक चीज चाहे वह अजीव हो और चाहे सजीव कुछ न कुछ ऊष्मा-तरंगों को अपने पिण्ड या शरीर में से निरन्तर छोड़ती रहती है। "ईवा" उन तरंगों को पकड़कर उनको "ऊष्मा-चित्रों" में बदल देती है और इस प्रकार उन ऊष्मा-तरंगों की जनक वस्तु का भान करा देती है।

फरवरी १९५९ ई० के दिन अमेरिका ने जिस "वैनगार्ड दूसरे" (Vanguard II) नामक उपग्रह को "रेस" में या आकाश में छोड़ा था उसमें एक मिलीमीटर व्यास के एक सूक्ष्मतम "इन्फ्रारेड" थर्मोमीटर के चारों ओर बनाई हुई एक "मौसम आँख"

तरंगें हू-ब-हू होकर लाखों करोड़ों मील दूर के ग्रहों पर निवास करने वाले प्राणियों को रूपों के रूपों दिखला देती हैं।

पहिले हम टैलीविजन की प्रक्रिया को समझ लें। टैलीविजन में स्टूडियो के दृश्य को, जिसे प्रसारित या दूरसारित (telecast) करना होता है, बिजली के आवेगों में बदल दिया जाता है और इन आवेगों को विद्युत्-चुम्बकीय या रेडियो तरंगों के रूप में प्रसारित किया जाता है। रिसीवर अर्थात् टैलीविजन सेट उन विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को पकड़ कर उन्हें बिजली के आवेगों में बदल देता है और अन्त में वह प्रकाश में परिवर्तित हो जाते हैं। रिसीवर पर भी एक पर्दा होता है उस पर प्रकाश के चलते फिरते बिन्दुओं की प्रतिकृति के रूप में यह प्रकाश दिखाई देता है। यह सारी क्रिया शृंखला एक सैकण्ड के बहुत थोड़े से हिस्से में हो जाती है।

किसी एक चित्र को प्रसारित करने से पहिले उसे छोटे छोटे टुकड़ों की एक श्रेणी में तोड़ना पड़ता है। कोई चित्र इस रीति से कैसे तोड़ा जा सकता है इसकी कुछ धारणा बनाने के लिये आप किसी अखबार के चित्र को गौर से देखिये। ध्यान से देखने पर पता लगेगा कि यह चित्र छोटे छोटे बिन्दुओं की एक के बाद एक बनी हुई पंक्तियों से बना है। कुछ बिन्दु बड़े हैं, कुछ छोटे। बहुत सारे बड़े बिन्दुओं के मिलने से काला क्षेत्र बनता है। छोटे बिन्दुओं के मिलने से सफेद क्षेत्र बनता है।

यदि इनमें से प्रत्येक बिन्दु को एक बिजली-आवेग में बदल दिया जाय (बड़े बिन्दुओं के लिये प्रबल आवेग और छोटे बिन्दुओं के लिये इससे धीमा) तो उस चित्र को दूर सारित या टैलीकास्ट

करने की क्रिया में यहुना स्वयम् पूरा हो जायगा। थोड़ी देर के लिये मान लीजिये कि बिजली-आवेगों में बदलने वाले उपकरण को हम "बिन्दु परिवर्तक" कहते हैं। चित्र को दूरसारित या टेलीकास्ट करने के लिये बिन्दु-परिवर्तक चित्र के ऊपरी बाएं हाथ के कोने से काम शुरू करता है और बिन्दुओं की ऊपरी पंक्ति पर चलता है। बारी बारी से प्रत्येक बिन्दु को आवेगों में बदलता हुआ यह परिवर्तक इसी क्रम से नीचे की सभी पंक्तियों के बिन्दुओं को भी बदल देता है। एक एक पंक्ति को पूरा कर चुकने पर यह बिन्दु परिवर्तक घूम कर बाईं ओर आ जाता है और दूसरी पंक्ति पर चलने लगता है। यह वैसे ही होता है जैसे पुस्तक पढ़ते समय पुस्तक के पन्नों की पंक्तियों पर आपकी आँखें चलती हैं। आप बाईं ओर से दाईं ओर पढ़ते हैं और पृष्ठ के नीचे की ओर एक एक पंक्ति उतरते जाते हैं।

जब बिन्दु-परिवर्तक एक के बाद दूसरे बिन्दु को बिजली आवेगों में बदलता जाता है तब उधर रिसीवर पर आपका टेलीविजन सेट इन क्रम-अंकित तोवता के बिजली-आवेगों को छोटे बड़े आकारों वाले "बिन्दुओं" में बदलता जाता है। यह क्रिया इतनी तेजी से होती है कि यह सब बिन्दु मिलकर टेलीविजन सूक्रियो में हो रही क्रिया का चलता फिरता चित्र प्रस्तुत कर आपके सामने रख देते हैं।

यह बिन्दु-परिवर्तक एक विशेष प्रकार की इलेक्ट्रन ट्यूब होती है। इसकी अनेक किस्में होती हैं जिनमें एक किस्म आइकनोस्कोप होता है। इसमें तीन आवश्यक भाग होते हैं— पहिला मोजेइक दूसरा कलेक्टर रिंग और तीसरा इलेक्ट्रन गन।

मोजेइक एक वस्तु की प्लेट होती है जिस पर इन्सुलेटिंग व

प्रकाशक द्रव्य चढ़ा रहता है। प्रकाशक द्रव्य के एक तल पर चाँदी की छोटी छोटी लाखों बूँदें या गोलकण होते हैं। इन कणों में से प्रत्येक पर सीज़ियम जैसा एक विशेष पदार्थ चढ़ा रहता है। इस प्रकार चाँदी का प्रत्येक कण बहुत छोटे फोटो ट्यूब की तरह काम करता है। मोज़ेइक ऐसे छोटे छोटे लाखों फोटो-ट्यूबों का बना होता है।

जब किसी फोटो-ट्यूब पर प्रकाश पड़ता है तब उससे इलेक्ट्रन छूटते हैं। प्रकाश जितना अधिक तीव्र होगा उतने ही अधिक इलेक्ट्रन छूटेंगे। क्योंकि यह इलेक्ट्रन 'ऋण विद्युत् आवेश' के होते हैं इसलिये इलेक्ट्रनों के चले जाने पर फोटो-ट्यूब पर "धन-आवेश" (Positive Charge) रह जाता है। इस कारण मोज़ेइक पर डाला गया चित्र धन-विद्युत् के आवेशों की एक प्रतिकृति में बदल जाता है। इस बात को हम यों भी कह सकते हैं कि वह चित्र तब विद्युत्-आवेश के विभिन्न आकारों वाले 'बिन्दुओं' के रूप में टूट गया है।

फोटो ट्यूब द्वारा छोड़े गये इलेक्ट्रनों को कलेक्टर रिंग इकट्ठा कर लेता है। इस प्रकार वह आइकनोस्कोप से हट जाते हैं।

इलेक्ट्रन-गन में एक तन्तु और एक प्लेट होती है जिसमें एक छोटा छेद होता है। तन्तु यहाँ इलेक्ट्रनों के स्रोत के रूप में काम करता है। इस तन्तु से इलेक्ट्रन सब दिशाओं में छूटते हैं पर उनमें से अधिकांश को प्लेट पकड़ लेती है। फिर भी उनमें से कुछ तो उस छेद में से निकल जाते हैं— ठीक वैसे ही जैसे जलते हुए बल्ब के सामने रक्खे हुए गत्ते के छेद में से कुछ प्रकाश निकल जावे। यह बाल की तरह महीन इलेक्ट्रन-प्रवाह एक दूसरे से समकोण पर रक्खे

हुए दो प्लेट-समूहों द्वारा एक बार एक ओर, और फिर दूसरी ओर मोड़ा जाता है।

पहिला प्लेट-समुदाय उस इलेक्ट्रन-प्रवाह को ऊपर और नीचे मोड़ता है। यह मोड़ने की क्रिया प्लेटों पर धन और ऋण विद्युत् आवेशों की भिन्न भिन्न मात्राएं रख कर पैदा की जाती है। प्रवाह रण के लिये यदि ऊपर की प्लेट पर एक धन-आवेश और नीचे की प्लेट पर एक ऋण आवेश रक्खा जावे तो इलेक्ट्रन प्रवाह (जो ऋण आवेश के इलेक्ट्रनों का बना हुआ होता है) निचली प्लेट से ऊपर की प्लेट की ओर मुड़ना। यदि धन और ऋण आवेशों की मात्रा कम अधिक करदी जाय तो इलेक्ट्रन-प्रवाह को विभिन्न मात्राओं में ऊपर या नीचे की ओर मोड़ा जा सकता है।

दूसरा प्लेट-समुदाय इलेक्ट्रन-प्रवाह को दाएं या बाईं ओर मोड़ता है। इस प्रकार आप देखते हैं कि दोनों प्लेट-समुदायों के विद्युत्-आवेशों को कम-अधिक करके इलेक्ट्रन-प्रवाह को मोजैइक के किसी भी भाग तक भेजा जा सकता है।

इस प्रकार इलेक्ट्रन-प्रवाह को मोजैइक के ऊपरी बायें कोने से आरम्भ किया जाता है। यह फोटो क्यूबों की पहिली पंक्ति बाईं ओर से दाईं ओर चलता है। फिर बाईं ओर लौट र और दूसरी पंक्ति पर चलता है। इस प्रकार यह नीचे मोजैइक पर चलता जाता है को बारी

ऐसा करने का यह प्रयोजन है कि प्रत्येक इतने प्रकाश के बारी से इलेक्ट्रन फिर प्राप्त करा दिये फोटो-क्यूब में एक टकराने पर छोड़े थे। मान लीजिये

हैं। ये चमकीले और धुंधले विन्दु प्रतिदीप्त पर्दे पर टेलीकास्ट किये जाने वाले दृश्य का चित्र बना देते हैं।

प्रति सेकण्ड १ चित्र बनाने के लिये सारा पर्दा एक सैकण्ड में १० बार ढका जाता है। हमारी आँखें अपनी दृष्टि-जड़ता के कारण इन अलग अलग चित्रों को मिलाकर टेलीविजन के स्टुडियो में हो रहे कार्य-व्यापार का चलता फिरता हुआ दृश्य बना लेती हैं।

हमारे अपने शरीरों से निरन्तर प्रवाहित होती रहने वाली इलेक्ट्रन-तरंगों के एक पूरे समूह या 'सैट" (Set) के रूप में हमारे सबके अमर बने रहने की जिस बात को हमने यहाँ उठाया है वह बहुत कुछ टेलीविजन की प्रक्रियाओं से मिलती जुलती है। टेलीविजन के क्रियात्मक पहलुओं को, जिन पर हमने ऊपर विस्तार से प्रकाश डाला है भली भांति समझ बूझ लेने पर मनुष्य-शरीरों की अमरता की बात सरलता से समझी जा सकती है।

दोनों के सिद्धान्त एक हैं और दोनों की प्रक्रियायें इलेक्ट्रनों के एक समान आधार पर ही काम करती हैं।

इलेक्ट्रनों की इन प्रकाश-तरंगों को, जो हमारे शरीरों से निरन्तर बाहर की ओर चलती रहती हैं एक सतत प्रवाह के रूप में निरन्तर बहते रहने की शक्ति 'ईथर" में मौजूद चुम्बक-क्षेत्रों (Magnetic fields) से मिलती रहती है। यदि आपने किसी विद्युत् जनरेटर (Electric generator) को देखा हो तो आप जान चुके होंगे कि उस जनरेटर से बिजली का (या इलेक्ट्रनों का; क्योंकि इलेक्ट्रनों के प्रवाह को ही बिजली कहते हैं) प्रवाह पैदा करने में [illegible]क का उपयोग किया जाता है। यह एक सर्व-सम्मत तथ्य है कि

चुम्बक क्षेत्र इलेक्ट्रनों को गति प्रदान करते हैं। हमारी पृथ्वी एक विशाल चुम्बक की तरह आचरण करती है। एक चुम्बकीय क्षेत्र इसे चारों ओर घेरे हुए है। वान एलेन (Von Allen) और उसके कुछ सहकारियों ने एवं बाद में सोवियत स्पुटनिक और ल्यूनिक नामक मानव निर्मित उपग्रहों ने यह पता लगाया कि पृथ्वी के चारों ओर के इस चुम्बकीय क्षेत्र में दो 'पट्टियाँ' (belts) हैं जिनका एक ही वेग है। बाहरी पट्टी जहाँ पृथ्वी की सतह से २० हजार किलोमीटर से लेकर ६० हजार किलोमीटर की ऊँचाई तक फैली हुई है वहाँ भीतरी पट्टी का फैलाव १०० से लेकर ६ हजार किलोमीटर तक है। भीतरी पट्टी में जहाँ धन-विद्युत् आवेश के प्रोटनों की बहुतायत है वहीं बाहरी पट्टी में ऋण-विद्युत् आवेश के इलेक्ट्रनों की। हमारी पृथ्वी के बाहर निकलती हुई हमारे शरीर की इलेक्ट्रन तरंगों को यह चुम्बक-क्षेत्र एक असाधारण तेज धक्का मार कर उनकी आगे जाने की शक्ति में वृद्धि कर देता है।'

ज्योतिर्विज्ञानिक यह मान चुके हैं कि सूर्य एक साधारण दर्जे का तारा है और हमारी पृथ्वी एक साधारण दर्जे का ग्रह। इसका मतलब यह है कि हमारी पृथ्वी को यह एकाधिकार नहीं मिला हुआ है कि केवल वही अपना चुम्बकीय-क्षेत्र रखे। बहुत सम्भव है कि विश्व में लाखों करोड़ों ग्रह उपग्रह अपने अपने चुम्बक-क्षेत्र रखते हों। इन ग्रहों के पास से या उनमें होकर गुजरती हुई इलेक्ट्रन-तरंगों को वहाँ वहाँ से ताजा और नये धक्के एवं इस कारण नई शक्तियाँ मिलती रहती हैं जिससे वह 'ऐन्' में आगे की ओर अपना सफर जारी रख सकें।

अब चौथा और अन्तिम क्रम में निर्णायक प्रश्न, यह होगा कि

यदि यह मान भी लें कि "देश" में लाखों करोड़ों मील दूर अनेक ग्रहों पर हम जैसे या हमसे भी अधिक बुद्धिमान प्राणी रहते हैं और यह भी कि उनके पास सूक्ष्म प्रकाश-तरंगों को पकड़ने वाले उपकरण भी हैं फिर भी क्या किसी ने कभी इलेक्ट्रन-तरंगों या प्रकाश-तरंगों के एक पूरे "देश" में बंधी हुई भूतकालीन मानवी घटनाओं को प्रत्यक्ष देखा भी है ? प्रश्न बहुत संगत है और मानव की अमरता के विषय में हमारे द्वारा पेश की जा रही इस स्थापना के लम्बा तथ्य पर एक निर्णायक प्रभाव डालने वाला है। इस प्रश्न के उत्तर में हम एक ऐसी सच्ची घटना का उल्लेख कर रहे हैं जब यूरोप की दो शिक्षित महिलाओं ने अपनी इसी देह में लगभग ११२ वर्ष पूर्व के दृश्य को अपनी आँखों से देखा था। *उनकी भौतिक इंद्रियों ने* अतीत के काले और दुर्भेद्य पर्दे को चीर कर सन् १७८९ ई० के फ्रेन्च राजमहल में एक दिन बीते हुए एक दृश्य को देखा था। ए० एम० फिलिप्स (A. M. Phillips) के लिखे हुए एक लेख के आधार पर हम इस घटना का पूरा विवरण दे रहे हैं।

इस घटना को प्रत्यक्ष देखने वाली इन दोनों महिलाओं के नाम क्रमशः मिस सी० ए० ई० मोबर्ले और मिस एलेनोर एफ० जोर्डेन थे। मिस मोबर्ले सन् १८८६ ई० में आक्सफोर्ड के सेन्ट ह्यूग्स कालेज की प्रधानाध्यापिका थीं। उन्होंने सन् १९१५ ई० में अपने पद से इस्तीफा दिया था। मिस जोर्डेन कुछ वर्षों तक उसी कालेज में उप प्रधानाध्यापिका थी और मिस मोबर्ले के इस्तीफा दे देने के बाद वहाँ प्रधानाध्यापिका बन गई थीं। सन् १९२४ ई० में उनका देहान्त हो गया। फ्रेन्च भाषा के अपने विशद ज्ञान के बल पर

प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान में तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने उनकी सेवाएँ भी प्राप्त की थी।

१० अगस्त सन् १९०१ ई० को मिस मोबर्ले और मिस जोर्डेन ने फ्रान्स की राजधानी पेरिस के पास वार्साई की यात्रा की थी। फ्रान्स के बोर्बन वंश के सम्राटों ने अपने राज्य काल में वार्साई में अपने महल बनवाये थे और वहीं रहा करते थे। उन दोनों महिलाओं में से किसी ने भी उस दिन के पहिले कभी भी वार्साई या त्रियनन नहीं देखा था। वार्साई पहुँचकर उन दोनों ने एक उद्यान में स्थित राज-प्रासाद "पेटित त्रियनन" को देखने का विचार किया। यह राज-प्रासाद मेरी एन्तोइनेटे, जो लुई सोलहवें की रानी थी, का प्रिय विहार-स्थल था।

वार्साई के महल के बाहर निकलकर वह दोनों महिलाएँ त्रियनन से आगे बढ़ीं। उन्होंने वही रास्ता छोड़ दिया और एक गलियारे में बढ़ती चली गयीं। इस गलियारे से होकर वे राज प्रासाद के पिछवाड़े की विशाल फुलवाड़ी में पहुँच गईं।

इस गलियारे में ही उनकी उस यात्रा की अलौकिक घटनाएँ मिलनी शुरू हुईं। यहीं पर उन्होंने किसी मकान के नजदीक खेती के अन्य औजारों के साथ एक बड़ा सा हल रक्खा हुआ देखा। यहीं पर उन्होंने हरे रंग की वर्दियाँ और तिकोने हैट पहिने हुए दो पहरेदारों को देखा। रास्ता पूछने पर उन दोनों पहरेदारों ने उन महिलाओं को सीधे आगे जाने को कहा।

दोनों औरतें ज्यों ज्यों आगे बढ़ती गईं उन्हें लगा कि मानों उनका दिल बठता जा रहा है। उन्होंने अपने अन्दर एक अजीब

बातें करते हुए कुछ अदृश्य लोगों की आवाजें सुनी। वाद्य-यन्त्रों से धीमे धीमे निकलते हुए संगीत की स्वर-लहरी सुनी। बाद में उसने याद करके उस संगीत की कुछ कड़ियां लिख भी लीं। इन कड़ियों के बारे में अधिकारी विद्वानों ने कहा कि ऐसा संगीत अठारहवीं सदी के अन्तिम और उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भिक काल में प्रचलित था।

फिर, लगभग दो साल तक मिस जोर्डेन कई बार त्रिएनन गई, लेकिन बार बार ढूंढ कर भी वह उन रास्तों का पता नहीं पा सकी जिन पर वह सन् १९०१ ई० में चली थी और न वह बगान ही पा सकी जिसमें उसने संगीत सुना था। मिस जोर्डेन ने इन घटनाओं की सूचना मिस मोबर्ले को दी और १९०४ ई० की चार जुलाई को दोनों महिलाएं फिर त्रिएनन के बाग में पहुंची कि एक बार फिर वह अपनी पहली यात्रा के अविस्मरणीय सूत्रों का पता लगा सकें। मगर उन्हें असफलता ही मिली। वे रास्ते, वह महल, वह पुल जंगल, उद्यान- सभी गायब हो चुके थे और उनकी जगह पर नये महल थे, नये रास्ते थे, नयी फुलवाड़ियां थीं। जो दृश्य उन्होंने देखे थे वह या तो कभी वहां थे ही नहीं और यदि थे तो अब उन्हें जमीन निगल गई थी आसमान खा चुका था।

बारीकी से खोज किये जाने पर ऐतिहासिक तथ्यों से यह पूरी तरह सिद्ध होगया कि सन् १९०१ ई० में मिस मोबर्ले और मिस जोर्डेन ने त्रिएनन के जिन बगानों का जो दृश्य देखा था- वह ठीक रूप में सन् १७८९ ई० में कायम था। इस यात्रा और बाद में की गयी खोजों के सारे कागजात जैसा कि पहिले भी लिखा जा चुका है, बोडलेन लाइब्रेरी में सुरक्षित रक्खे हैं। यह सब प्राचीन

पेरिस के "आर्चिव्स नेशनलिस" और "बिब्लियोथेक नेशनले" में की गयी थी, जहाँ उन सारी तिथियों की सूची और प्रत्येक तिथि पर मिस जोर्डन के हस्ताक्षर हैं जब जब वह वहाँ अपनी खोज के लिये गयी थीं।

सन् १९०८ ई० में एक बार फिर मिस जोर्डन को अतीत में यात्रा करने का अनुभव हुआ। यह अनुभव भी उसे उसी गलियारे में हुआ। इस बार भी उसे लगा कि "उसके अन्दर और बाहर की परिस्थितियों में कोई विचित्र और अबूझ परिवर्तन होने लगा।" उसे अनुभव हुआ जैसे "वह अचानक किसी अन्य स्थान पर पहुँच गई है और वह स्थान भी एकदम वास्तव है, सत्य है।"

एक बात और है जो मिस जोर्डन की पुस्तक "एन एडवेन्चर" के अन्तिम पृष्ठ पर लिखी हुई है। सन् १९१४ ई० में दोनों स्त्रियों की भेंट एक अमरीकी परिवार से हुई। यह परिवार सन् १९०७ और १९०८ ई० में वार्साई में रह चुका था। इस परिवार के लोग भी त्रिएनन के बाग में गये थे और उन्होंने भी अजीबोगरीब घटनाएँ देखी थीं। इन लोगों ने भी महसूस किया था कि रह रह कर त्रिएनन के दृश्य बदल जाते हैं और वहाँ की सारी रोशनी जैसे अतीत के अन्धकार में धूमिल हो जाती है।

इन बातों के अतिरिक्त उस परिवार के व्यक्तियों ने त्रिएनन में "विचित्र ध्वनियाँ और वायु में संगीत की लहरें जैसी सुनी थीं" और उन्हें लगा था जैसे कि वह पूरा स्थान विद्युत्-तरंगित है। यह बात सुन कर "एन एडवेंचर" की लेखिकाओं ने तिथि-सम्बन्धी

देखना शुरू किया और उन्हें पता लगा कि सन् १९०१ ई० को उस अगस्त के दिन सम्पूर्ण यूरोप में एक विद्युत्-तूफान प्रवाहित हुआ था।

लगभग ११२ वर्ष पहिले वार्साई के राज-महल में एक दिन जो घटना घट चुकी थी वह और उस राज-महल के आस पास के उद्यान स्वरूप पुष्प और लताएं तथा उस दिन इलैक्ट्रन-तरंगों के रूप में परिवर्तित होकर अनन्त 'देश" (Space) में अपनी लम्बी यात्रा कर चुके थे उनको वह विद्युत्-तूफान (Electric storm) किसी प्रकार अपनी लपेट में पकड़ लाया था और बीसवीं सदी की दो महिलाओं को उन सब की एक प्रत्यक्ष झलक दे गया था।

पर्वतों की मौसम की झिलमिलाती धूप में अनेक व्यक्तियों को आकाश में बड़े बड़े महल और कभी कभी सजी हुई चीजें देखने को मिली हैं। लोगों ने उन्हें "मरीचिकाएं (Mirages) कह कर हंसी में टाल दिया है। क्या वह सब अतीत के जमाने के यथार्थ जीवन चित्र तो नहीं थे जो आज से सैकड़ों वर्ष पहिले पृथ्वी पर मौजूद थे और उसके बाद इलैक्ट्रन-तरंगों में परिवर्तित हो गये थे। सम्भवतः कोई अतिशय शक्ति-शाली विद्युत-तूफान उन्हें किसी दूर 'देश' से वापिस पकड़ लाया हो और उन व्यक्तियों को उन्हें दिखा गया हो।

पृथ्वी की सब वस्तुएं, सजीव और अजीव सब, निरन्तर इलैक्ट्रन-तरंगों में परिवर्तित होती रहती हैं। अपने भौतिक अस्तित्व की शुरुआत से लेकर उस अस्तित्व की समाप्ति तक सब वस्तुओं का

एक अटूट शृंखला-बद्ध जीवन-सम्बन्ध (Life-set) इन इलैक्ट्रन तरंगों में बंधा हुआ अनन्त "देश" में न मालूम किस मन्जिल पर पहुंचने के लिये निरन्तर आगे और आगे चलता रहता है। जबसे हमारी यह पृथ्वी बनी है तब से यह अपनी कहानी को इन इलैक्ट्रन तरंगों में बांध कर मृत्यु और विनाश की पहुंच के बाहर अनन्त 'देश' में सुरक्षित रखती चली आई है। पृथ्वी की इस अमर कहानी में पहाड़ों नदियों पेड़ पौधों और भूमि-तल की व्यक्ति-गत कहानियों के साथ साथ जुड़ी हुई प्रत्येक मनुष्य की जीवन कहानी अपने अपने अलग रूप में इलैक्ट्रन-तरंगों को कभी न मिटने वाली स्याही में लिखी जाकर सदा सदा के लिये अमर बन चुकी है। मृत्यु पर मनुष्य की यह एक सहज विजय है — कोई तपस्या, कोई साधना और कोई प्रयत्न किये बिना विजय।

विश्व-प्रसिद्ध वैज्ञानिक आर्थर फिण्डले ने अपनी पुस्तक 'ऑन दी एज आफ दी एसोटेरिक" (On the edge of the esoteric) में १० दिसम्बर सन् १९२१ ई० के दिन किये गये अपने एक प्रयोग में एक आत्मा की भेंट का जिक्र करते हुए लिखा है कि उस आत्मा ने यहां बतलाया कि मरने के पहिले उसका शरीर जिस रूप में था ठीक वही रूप उसका तब भी (आत्मा के रूप में) था। उसके हाथ पैर, सिर इत्यादि उसी प्रकार थे। मरने के पहिले उनका सूक्ष्म शरीर उसके स्थूल शरीर में मिला हुआ था। अब वह पृथक हो गया था। उस आत्मा ने यह भी बतलाया कि स्थूल शरीर के न होने पर भी उसकी आकृति रूप, चिह्न तथा आकार बिल्कुल स्थूल शरीर के ही थे। आत्मा के रूप में उसकी चलने की शक्ति बहुत तेज थी।

आध्यात्मिक क्षेत्र की जानकारी में बहुत अधिक आगे बढ़े हुए भारतीय चिन्तकों और दार्शनिकों ने भी प्रत्येक जीवधारी के इन दोनों शरीरों, स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व को मानकर मृत्यु के उपरान्त उस जीवधारी के सूक्ष्म शरीर के सनातन अस्तित्व को माना है। सूक्ष्म शरीर को ही उन्होंने आत्मा माना है। इलेक्ट्रन प्रकाश-तरंगों के रूप में विद्यमान जीवन-समूह (Life-set) ही सूक्ष्म शरीर या आत्मा है।

कारण के अनुरूप कार्य होता है और पिता के अनुरूप पुत्र। प्रकृति स्वयं अमर है अविनाशिनी है और सनातन है। निश्चय ही ऐसी प्रकृति केवल ऐसे विश्व-प्रपञ्च को ही जन्म दे सकती है जो अमर हो, अविनाशी हो और सनातन हो।

प्रकृति का ही दूसरा नाम शक्ति है। हम सब शक्ति की ही सन्तान हैं– शक्ति के ही विविध रूप हैं। भौतिक विज्ञान का एक स्वयं सिद्ध है; (Energy never dies) अर्थात् शक्ति का कभी ह्रास नहीं होता वह अस्तत्व बनी रहती है। अपने भौतिक रूपों को वह अवश्य बदलती रहती है– कभी एक रूप और कभी दूसरा। शक्ति चाहे जितने रूप बदले उसके मूल पुञ्ज में कोई ह्रास नहीं होता।

हम सब इस विश्व-शक्ति के अमर पुत्र हैं। आज से हजारों वर्ष पहिले भारत के तपपूत ऋषि इस विश्व-सत्य का साक्षात्कार कर चुके थे तभी वह यह कह सके थे 'शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा ये धामानि दिव्यानि तस्थुः।' "हे अमृत (शक्ति या इलेक्ट्रन की प्रकाश तरंगों) के पुत्रो! आप सब जो दिव्य (प्रकाशमय) धामों या रूपों में

मस्त होगये हों तुम्हें।

हम सब अमृत के पुत्र एक अनन्त यात्रा-पथ के पथिक हैं। मारा सबका एक ही गन्तव्य मार्ग है; सबकी एक ही मंज़िल है। मारी इस मंज़िल को लेकर अनेक ऋषियों दार्शनिकों और चारकों ने अपने अलग अलग मत दिये हैं। कोई नहीं बता सका कि हम इस दुनिया में कहाँ से आये हैं और कहाँ जायेंगे। यह तो क निश्चित बात है कि हम चल तो ज़रूर रहे हैं। लेसिल बैस्टू न के शब्दों में 'हम प्रवासी हैं और जिस ग्रह पर आ रहे हैं उस ग्रह के एक जन्तु हैं। हम चलते हैं, ठहरते हैं परन्तु काल के प्रवाह के अनुसार कोई जितनी देर ठहर सकता है उतनी ही देर।"

मेरा अपना विश्वास तो यह है– और शायद आगे चलकर भविष्य में किसी दिन विज्ञान भी अपनी तथ्य-परक उपलब्धियों के बल पर इसे पुष्ट भी करे– कि विश्व-ब्रह्माण्ड में मौजूद लाखों ग्रह हमारी पृथ्वी की तरह ही अपने अपने चुम्बक-क्षेत्र रखते हैं। यह सब चुम्बक-क्षेत्र अपने अपने ग्रह के "संग्रहण-क्षेत्र" (Catchment areas) भी हैं। अनन्त 'स्पेस' में एक अनन्त पथ की यात्रा पर चले हुए हमारे सनातन इलेक्ट्रान-तरंगों के पुंज 'सेटों' को जब जब वह उन उन चुम्बक-क्षेत्रों के पास से होकर गुज़रते हैं, वह क्षेत्र कुछ काल के लिये अपने चंगुल में फँसा लेते हैं और अपनी चुम्बकीय शक्ति का एक प्रबल धक्का मार कर उन्हें अपने अपने ग्रहों की ओर खींच लेते हैं। उन उन ग्रहों के वायु-मण्डल की दशा और उसके मुताबिक तब हमारे उन इलेक्ट्रान-तरंग सेटों को अपने में बसा कर हमें अपने अनुकूल भौतिक रूप देकर अपने ग्रह का निवासी

विश्व की आदि शक्ति (Energy) ही प्राणियों को, लोकों को और सब क्रियाओं प्रक्रियाओं को सम्पूर्ण रूप से व्याप्त कर व्रत (विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र Electromagnetic field) से सर्व प्रथम उत्पन्न होने वाले इलेक्ट्रॉनों के माध्यम से आत्मा (इलेक्ट्रॉन तरंगों (Electron-waves) में प्रविष्ट हो गई।

वेदांत-शास्त्रों ने आत्मा का जो स्वरूप और उसके जो धर्म बतलाये हैं वह सब ज्यों के त्यों इन इलेक्ट्रॉन-तरंगों के स्वरूप और धर्म हैं। शुक्ल यजुर्वेद का एक ऋषि 'मन' (आत्मा) के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहता है "यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतम्प्रजासु" अर्थात्, जो मन या आत्मा प्रज्ञान स्वरूप है, चितिशक्तियुत् या चैतन्य स्वरूप है, सम्पूर्ण विश्व को धारण किये हुए है और जो सब प्राणियों के अन्दर वर्तमान ज्योति-स्वरूप और अमृत-धर्मा है।"

बृहदारण्यकोपनिषद् के ऋषि याज्ञवल्क्य ने वैदेह जनक को आत्मा का स्वरूप बतलाते हुए कहा था "कतम आत्मेति योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः स समानः सन्नुभौलोका अनुसंचरति — अति क्रामति मृत्योः रूपाणि (अध्याय ४ ब्राह्मण ३ मन्त्र ७) अर्थात् जनक के यह पूछने पर कि आत्मा कौन है, याज्ञवल्क्य ने कहा जो यह विज्ञानमय है और प्राणों में एवं हृदय में अन्तर्वर्ती ज्योति है वह ज्योतिर्मय पुरुष अपने एक ही समान रूप में (ज्योति रूप में) रहता हुआ दोनों लोकों (पृथ्वी पर और ऊपर अनन्त देश' Space में) संचरण करता है और मृत्यु के रूपों को लांघ जाता है।

आप और मैं एक दूसरे को अपनी आँखों की रेटीना पर पड़ी हुई आपके और मेरे शरीरों की इलेक्ट्रन-तरंगों की प्रतिच्छाया के रूप में देखते हैं इस बात को छान्दोग्योपनिषद् के एक ऋषि ने कितने संक्षिप्त और सुन्दर रूप में व्यक्त किया है— 'य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति" (अध्याय ८ खण्ड ७ मन्त्र ४) यह जो आँख में पुरुष दिखता है वह आत्मा है वह अमृत है, वह अभय है और वह ब्रह्म है।

श्रीमद्भगवद्गीता में योगीश्वर श्रीकृष्ण ने आत्मा की अविनश्वरता का प्रतिपादन करते हुए कहा है "य स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति" अर्थात् सब भूतों (प्राणियों) के नष्ट होने पर भी नहीं नष्ट होता है। आगे चलकर उन्होंने इस ज्योति स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है" ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते। ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्। अर्थात् वह आत्मा ज्योतियों (प्रकाशशील विद्युत् आग इत्यादि) का भी ज्योति है एवं इस कारण अन्धकार से परे कहा जाता है। वह बोधस्वरूप और जानने के योग्य है एवं ज्ञान से ही प्राप्त होने वाला और सबके हृदय में स्थित है।

सत्व रज और तम (इलेक्ट्रन, प्रोटन और न्यूट्रन) इन तीनों गुणों से निर्मित मानव देह के भौतिक बन्धन से मुक्त होकर प्राणी "अमृत" या अमरत्व को पा लेता है इस तथ्य की अभिव्यक्ति गीताकार ने यों की है" गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्म मृत्यु जरा दुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते।

देही प्राणी अपने स्थूल शरीर की उत्पत्ति के कारण रूप

विश्व की आदि शक्ति (Energy) ही प्राणियों को, लोकों को और सब क्रियाओं प्रतिक्रियाओं को सम्पूर्ण रूप से व्याप्त कर क्षेत्र (विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र Electromagnetic field) से सर्व प्रथम उत्पन्न होने वाले इलैक्ट्रनों के माध्यम से आत्मा (इलेक्ट्रन तरंगों (Electron waves) में प्रविष्ट हो गई।

वेदांत-वादी ने आत्मा का जो स्वरूप और उसके जो धर्म बतलाये हैं वह सब ज्यों के त्यों इन इलेक्ट्रन-तरंगों के स्वरूप और धर्म हैं। शुक्ल यजुर्वेद का एक ऋषि 'मन' (आत्मा) के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहता है "यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतम्प्रजासु" अर्थात्, जो मन या आत्मा प्रज्ञान स्वरूप है, चित्तिरूप या चैतन्य स्वरूप है, सम्पूर्ण विश्व को धारण किये हुए है और जो सब प्राणियों के अन्दर वर्तमान ज्योति-स्वरूप और अमृत-धर्मा है।"

बृहदारण्यकोपनिषद् के ऋषि याज्ञवल्क्य ने वैदेह जनक को आत्मा का स्वरूप बताते हुए कहा था "कतम आत्मेति योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः स समानः सन्नुभौ लोकावनुसंचरति — अति क्रामति मृत्योः रूपाणि (अध्याय ४ ब्राह्मण ३ मन्त्र ७) अर्थात् जनक के यह पूछने पर कि आत्मा कौन है, याज्ञवल्क्य ने कहा जो यह विज्ञानमय है और प्राणों में एवं हृदय में अन्तर्वर्ती ज्योति है वह ज्योतिर्मय पुरुष अपने एक ही समान रूप में (ज्योति रूप में) रहता हुआ दोनों लोकों (पृथ्वी पर और ऊपर अनन्त देश" Space में) संचरण करता है और मृत्यु के रूपों को लांघ जाता है।

आप और मैं एक दूसरे को अपनी आँखों की रेटीना पर पड़ी हुई आपके और मेरे शरीरों की इलेक्ट्रन-तरंगों की प्रतिच्छाया के रूप में देखते हैं इस बात को छान्दोग्योपनिषद् के एक ऋषि ने कितने ललित और सुन्दर रूप में व्यक्त किया है— "यएषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्म ति' (अध्याय ८ खण्ड ७ मन्त्र ४) यह जो आँख में पुरुष दिखता है वह आत्मा है वह अमृत है, वह अभय है और वह ब्रह्म है।

श्रीमद्भगवद्गीता में योगीश्वर श्रीकृष्ण ने आत्मा की अविनश्वरता का प्रतिपादन करते हुए कहा है: "य स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति" अर्थात् सब भूतों (प्राणियों) के नष्ट होने पर भी नहीं नष्ट होता है। आगे चलकर उन्होंने इस ज्योति स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है: ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः तमसः पर मुच्यते। ज्ञानं ज्ञेय ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्' अर्थात् वह आत्मा ज्योति यों (प्रकाशशील विद्युत् आग इत्यादि का भी ज्योति है एवं इस कारण अन्धकार से परे कहा जाता है। वह बोधस्वरूप और जानने के योग्य है एवं ज्ञान से ही प्राप्त होने वाला और सबके हृदय में स्थित है।

सत्व रज और तम (इलेक्ट्रन, प्रोटन और न्यूट्रन) इन तीनों गुणों से निर्मित मानव देह के भौतिक बन्धन से मुक्त होकर प्राणी "अमृत" या अमरत्व को पा लेता है इस तथ्य की अभिव्यक्ति गीता कार ने यों की है: गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।

जन्म मृत्यु जरा दुःखैर्विमुक्तोऽमृत मश्नुते।

देही प्राणी अपने स्थूल शरीर की उत्पत्ति के कारण रूप

तीनों गुणों को उल्लंघन करके जन्म मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकार के दुःखों से मुक्त हुआ 'अमृतत्व' को प्राप्त होता है।

इलेक्ट्रन-तरंगों के सूक्ष्म रूप में वर्तमान इस आत्मा को "उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्। विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः" (श्री मद्भगवद्गीता अध्याय १५ श्लोक १) प्राणी-शरीर को छोड़कर जाते हुए अथवा शरीर में वर्तमान रहते हुए और तीनों गुणों से युक्त होकर सांसारिक विषयों को भोगते हुए आत्मा को अज्ञानीजन नहीं देख पाते केवल ज्ञान-रूप नेत्र वाले (जिन्होंने इसके प्रकाशमय रूप को जान लिया है) ज्ञानीजन ही इसे देखते या जानते हैं।

भारतीय दर्शन-ग्रन्थ और पाश्चात्य आधुनिक विज्ञान (Modern Science) दोनों यहाँ आकर एक मत हो गये हैं एक ही विश्व-तथ्य को इन दोनों ने अलग अलग पारिभाषिक संज्ञाएँ देकर एक ऋषि के इस वचन को कितने सुन्दर रूप में सार्थक कर दिखाया है "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" अर्थात्; एक ही सत् (विश्व-तथ्य) को विद्वान् लोग बहुत तरह से अपने अलग अलग तरीकों पर, कहते हैं। जब हम उक्त शब्दों को देख कर सुनते ही हमें कुछ विभ्रम होजाय परन्तु आगे चलकर जब वह अपनी परिभाषाएँ करते हैं तो एक ही नजर में हम जान लेते हैं कि दोनों एक ही तथ्य का बिल्कुल मिलता जुलता वर्णन कर रहे हैं। भारतीय ऋषियों का ज्योति-स्वरूप सर्वव्यापी और अविनश्वर आत्मा ही आधुनिक विज्ञान का ज्योति-स्वरूप सर्व-व्यापी और अविनश्वर इलेक्ट्रन-तरंग-प्रवाह है। यह अज है और अमर है- यही नहीं इसका अधिष्ठान प्राणी-शरीर भी अमर है।

हम सब एक अनन्त पथ के अमर यात्री हैं। रास्ते में चलते २ जब थोड़ी थकावट महसूस हुई कि कहीं रुक कर सोगये। नींद टूटी कि फिर चलने लगे। सोने वाले और फिर उठकर चलने वाले दोनों हम एक ही हैं; हमारे स्वरूप में तो कोई फर्क नहीं पड़ता।

अंग्रेज कवि वर्डसवर्थ ने अपने अमर गीति-काव्य 'ओड टू इमोर्टलिटी" (Ode to Immortality) में इस भाव को मर्मस्पर्शी शब्दों में यों गाया है —

Our birth is but a sleep and a forgetting
The soul that rises with us our life a star
Hath had elsewhere its setting
And Cometh from afar

अर्थात्; जिसे हम जन्म कहते हैं वह हमारी नींद की अवस्था है, विस्मृति का काल है। जो आत्मा हमारे जीवन के नक्षत्र की तरह हमारे साथ आई है वह यहाँ (उदय होने के पूर्व) कहीं अन्यत्र डूब चुकी है और वह कहीं बहुत दूर से आई है।

जीवन अमर है, इसीलिये उसे बार बार मृत्यु के बीच से नवीन बना लेना पड़ता है। शीत में सब कुछ झड़ जाता है उसकी हरियाली को वसन्त फिर भर देता है। समग्र विश्व में एक ही महा-प्राण (आत्मा या विद्युत-चुम्बकीय तरंगों) का विराम हो रहा है— 'भासमकरणमपूर्वं तद्भाति"। हम सब उस ज्योतिर्मय प्राण की अखण्ड सत्ता की प्रज्वलित किरणें हैं। सम्पूर्ण का जैसे विनाश नहीं होता वैसे ही सम्पूर्ण से निकले हुए रूप का भी विनाश नहीं होता बल्कि सम्पूर्ण में उसके मिल जाने पर नई नई जीवन-किरणें

की सम्भावना होती है। जहाँ हमारी भौतिक देह का अवसान होता है और जिसे हम मृत्यु कहते हैं वह वास्तव में नये जीवन-देश का एक प्रस्त है। यही जीवन का अमृत-रस है। "देश" और उसकी ही एक दूसरी अभिव्यक्ति "काल" की अनन्त धारा में जीवन बहता चला जा रहा है। वह अमर है; वह अविनाशी है, वह सर्वगामी है और हम जो उस जीवन को अपनी स्थूल भौतिक देहों में ढोये फिरते हैं स्वयं अमर हैं अविनाशी हैं और सर्वगामी हैं।

